रचना संसार

आधुनिक कवि एवं उनकी प्रमुख पुस्तकें

Rachna Sansar: Modern Poets and Their Major Books

प्रशांत दीक्षित

रचना संसार : आधुनिक कवि एवं उनकी प्रमुख पुस्तकें

रचना संसार : आधुनिक कवि एवं उनकी प्रमुख पुस्तकें

(Rachna Sansar: Modern Poets and Their Major Books)

प्रशांत दीक्षित

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-6115-2

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

नागार्जुन (30जून 1911- 5 नवम्बर 1998) हिन्दी और मैथिली के अप्रतिम लेखक और कवि थे। अनेक भाषाओं के ज्ञाता तथा प्रगतिशील विचारधारा के साहित्यकार नागार्जुन ने हिन्दी के अतिरिक्त मैथिली संस्कृत एवं बाङ्ला में मौलिक रचनाएँ भी कीं तथा संस्कृत, मैथिली एवं बाङ्ला से अनुवाद कार्य भी किया। साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित नागार्जुन ने मैथिली में यात्री उपनाम से लिखा तथा यह उपनाम उनके मूल नाम वैद्यनाथ मिश्र के साथ मिलकर एकमेव हो गया।

आज भले ही हिन्दी साहित्य में छायावादी युग का अवसान हो चुका हो, किन्तु यह सत्य है कि हिन्दी कविता छायावाद के एक अत्यन्त समृद्ध व सम्पन्न दौर से गुजरा है। हिन्दी में जब कभी छायावाद की चर्चा होती है, तब उसके चार सुदृढ़ स्तम्भों के रूप में प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा तथा सुमित्रानंदन पंत को याद किया जाता है।

हिन्दी जिस रूप में आज हमारे सामने है, उसमें निराला का बहुत बड़ा योगदान है। हीन ग्रंथि से पीड़ित हिन्दी समाज को अपनी भाषा और साहित्य पर इसलिए स्वाभिमान होना चाहिए, क्योंकि उसके पास विश्व का सबसे बडा कवि तुलसीदास हैं। उन्हें इसलिए भी गौरव होना चाहिए क्योंकि उनके पास सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जैसा साहित्यकार और पत्रकार उपलब्ध है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (9 सितंबर 1850-6 जनवरी 1885) आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह कहे जाते हैं, वे हिन्दी में आधुनिकता के पहले रचनाकार थे। इनका मूल नाम 'हरिश्चन्द्र' था, 'भारतेन्दु' उनकी उपाधि थी। उनका कार्यकाल युग की सन्धि पर खड़ा है। उन्होंने रीतिकाल की विकृत सामन्ती संस्कृति की पोषक वृत्तियों को छोड़कर

स्वस्थ परम्परा की भूमि अपनाई और नवीनता के बीज बोए। हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**नागार्जुन**	**1**
	लेखन-कार्य एवं प्रकाशन	3
	समालोचना	7
	मैथिली गीत, 'श्यामघटा, सित बीजुरि-रेह'	20
2.	**सुमित्रानन्दन पन्त**	**21**
	साहित्यिक परिचय	24
	भाव पक्ष	30
	भाषा-शैली	31
3.	**सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला**	**33**
	कार्यक्षेत्र	39
	प्रौढ़काल	47
	रचनावली	52
4.	**भारतेन्दु हरिश्चंद्र**	**53**
	जीवन परिचय	54
	अलंकार	61
5.	**अज्ञेय**	**67**
	जीवन परिचय	67

कार्यक्षेत्र 68
6. डॉ. धर्मवीर भारती 73
जीवन परिचय 73
कार्यक्षेत्र 75
7. जयशंकर प्रसाद 77
जीवनी 78
पारिवारिक विपत्तियाँ 79
छायावाद की स्थापना 86
8. रामधारी सिंह 'दिनकर' 91
प्रमुख कृतियाँ 93
सम्मान 97
9. अरबिंदो घोष 99
जीवन परिचय 99
शिक्षा 100
मृत्यु 108
10. मैथिलीशरण गुप्त 109
जीवन परिचय 109
देश प्रेम 111
साकेत का आवरण पृष्ठ 113
यशोधरा खण्डकाव्य 121
विसर्जन 124
11. बालकृष्ण शर्मा नवीन 125
जीवन परिचय 125
व्यावहारिक राजनीति 126
दुरूह अकाव्यात्मक शब्दावली 130
12. रामविलास शर्मा 131
प्रकाशित कृतियाँ 132
शर्मा जी पर केन्द्रित विशिष्ट साहित्य 134
13. दुष्यंत कुमार 139
जीवन परिचय 139
प्रकाशित रचनाएं 142

14. हरिवंश राय बच्चन **144**
जीवन परिचय 144
हरिवंश राय बच्चन 146
आत्मकेन्द्रित कवि 150
15. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' **154**
जन्म और शिक्षा 154
'मुक्तिबोध' प्रतिमा 155
निधन 161

1

नागार्जुन

नागार्जुन हिन्दी और मैथिली के अप्रतिम लेखक और कवि थे। अनेक भाषाओं के ज्ञाता तथा प्रगतिशील विचारधारा के साहित्यकार नागार्जुन ने हिन्दी के अतिरिक्त मैथिली, संस्कृत एवं बांग्ला में मौलिक रचनाएँ भी कीं तथा संस्कृत, मैथिली एवं बांग्ला से अनुवाद कार्य भी किया। साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित नागार्जुन ने मैथिली में यात्री उपनाम से लिखा तथा यह उपनाम उनके मूल नाम वैद्यनाथ मिश्र के साथ मिलकर एकमेक हो गया।

नागार्जुन का जन्म 1911 ई. की ज्येष्ठ पूर्णिमा को वर्तमान मधुबनी जिले के सतलखा में हुआ था। यह उन का ननिहाल था। उनका पैतृक गाँव वर्तमान दरभंगा जिले का तरौनी था। इनके पिता का नाम गोकुल मिश्र और माता का नाम उमा देवी था। नागार्जुन के बचपन का नाम 'ठक्कन मिसर' था। गोकुल मिश्र और उमा देवी को लगातार चार संताने हुईं और असमय ही वे सब चल बसीं। संतान न जीने के कारण गोकुल मिश्र अति निराशापूर्ण जीवन में रह रहे थे। अशिक्षित ब्राह्मण गोकुल मिश्र ईश्वर के प्रति आस्थावान तो स्वाभाविक रूप से थे ही पर उन दिनों अपने आराध्य देव शंकर भगवान की पूजा ज्यादा ही करने लगे थे। वैद्यनाथ धाम (देवघर) जाकर बाबा वैद्यनाथ की उन्होंने यथाशक्ति उपासना की और वहाँ से लौटने के बाद घर में पूजा-पाठ में भी समय लगाने लगे। फिर जो पाँचवीं संतान हुई तो मन में यह आशंका भी पनपी कि चार संतानों की तरह यह भी कुछ समय में ठगकर चल बसेगा। अत: इसे 'ठक्कन' कहा जाने लगा। काफी

दिनों के बाद इस ठक्कन का नामकरण हुआ और बाबा वैद्यनाथ की कृपा-प्रसाद मानकर इस बालक का नाम वैद्यनाथ मिश्र रखा गया।

गोकुल मिश्र की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं रह गयी थी। वे काम-धाम कुछ करते नहीं थे। सारी जमीन बटाई पर दे रखी थी और जब उपज कम हो जाने से कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं तो उन्हें जमीन बेचने का चस्का लग गया। जमीन बेचकर कई प्रकार की गलत आदतें पाल रखी थीं। जीवन के अंतिम समय में गोकुल मिश्र अपने उत्तराधिकारी (वैद्यनाथ मिश्र) के लिए मात्र तीन कट्ठा उपजाऊ भूमि और प्रायः उतनी ही वास-भूमि छोड़ गये, वह भी सूद-भरना लगाकर। बहुत बाद में नागार्जुन दंपति ने उसे छुड़ाया।

ऐसी पारिवारिक स्थिति में बालक वैद्यनाथ मिश्र पलने-बढ़ने लगे। छह वर्ष की आयु में ही उनकी माता का देहांत हो गया। इनके पिता (गोकुल मिश्र) अपने एक मात्र मातृहीन पुत्र को कंधे पर बैठाकर अपने संबंधियों के यहाँ, इस गाँव-उस गाँव आया-जाया करते थे। इस प्रकार बचपन में ही इन्हें पिता की लाचारी के कारण घूमने की आदत पड़ गयी और बड़े होकर यह घूमना उनके जीवन का स्वाभाविक अंग बन गया। "घुमक्कड़ी का अणु जो बाल्यकाल में ही शरीर के अंदर प्रवेश पा गया, वह रचना-धर्म की तरह ही विकसित और पुष्ट होता गया।"

वैद्यनाथ मिश्र की आरंभिक शिक्षा उक्त पारिवारिक स्थिति में लघु सिद्धांत कौमुदी और अमरकोश के सहारे आरंभ हुई। उस जमाने में मिथिलांचल के धनी अपने यहां निर्धन मेधावी छात्रों को प्रश्रय दिया करते थे। इस उम्र में बालक वैद्यनाथ ने मिथिलांचल के कई गांवों को देख लिया। बाद में विधिवत संस्कृत की पढ़ाई बनारस जाकर शुरू की। वहीं उन पर आर्य समाज का प्रभाव पड़ा और फिर बौद्ध दर्शन की ओर झुकाव हुआ। उन दिनों राजनीति में **सुभाष चंद्र बोस** उनके प्रिय थे। बौद्ध के रूप में उन्होंने **राहुल सांकृत्यायन** को अग्रज माना। बनारस से निकलकर कोलकाता और फिर दक्षिण भारत घूमते हुए लंका के विख्यात 'विद्यालंकार परिवेण' में जाकर बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। राहुल और नागार्जुन 'गुरु भाई' हैं। लंका की उस विख्यात बौद्धिक शिक्षण संस्था में रहते हुए मात्र बौद्ध दर्शन का अध्ययन ही नहीं हुआ, बल्कि विश्व राजनीति की ओर रुचि जगी और भारत में चल रहे स्वतंत्रता आंदोलन की ओर सजग नजर भी बनी रही। 1938 ई. के मध्य में वे लंका से वापस लौट आये। फिर आरंभ हुआ उनका घुमक्कड़ जीवन। साहित्यिक रचनाओं के साथ-साथ नागार्जुन राजनीतिक

आंदोलनों में भी प्रत्यक्षत: भाग लेते रहे। **स्वामी सहजानंद** से प्रभावित होकर उन्होंने बिहार के किसान आंदोलन में भाग लिया और मार खाने के अतिरिक्त जेल की सजा भी भुगती। चंपारण के किसान आंदोलन में भी उन्होंने भाग लिया। वस्तुत: वे रचनात्मक के साथ-साथ सक्रिय प्रतिरोध में विश्वास रखते थे। 1974 के अप्रैल में जेपी आंदोलन में भाग लेते हुए उन्होंने कहा था "सत्ता प्रतिष्ठान की दुर्नीतियों के विरोध में एक जनयुद्ध चल रहा है, जिसमें मेरी हिस्सेदारी सिर्फ वाणी की ही नहीं, कर्म की हो, इसीलिए मैं आज अनशन पर हूँ, कल जेल भी जा सकता हूँ।" और सचमुच इस आंदोलन के सिलसिले में आपात् स्थिति से पूर्व ही इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और फिर काफी समय जेल में रहना पड़ा।

1948 ई. में पहली बार नागार्जुन पर दमा का हमला हुआ और फिर कभी ठीक से इलाज न कराने के कारण आजीवन वे समय-समय पर इससे पीड़ित होते रहे। दो पुत्रियों एवं चार पुत्रों से भरे-पूरे परिवार वाले नागार्जुन कभी गार्हस्थ्य धर्म ठीक से नहीं निभा पाये और इस भरे-पूरे परिवार के पास अचल संपत्ति के रूप में विरासत में मिली वही तीन कट्ठा उपजाऊ तथा प्राय: उतनी ही वास-भूमि रह गयी।

लेखन-कार्य एवं प्रकाशन

नागार्जुन का असली नाम वैद्यनाथ मिश्र था परंतु हिन्दी साहित्य में उन्होंने नागार्जुन तथा मैथिली में यात्री उपनाम से रचनाएँ कीं। काशी में रहते हुए उन्होंने 'वैदेह' उपनाम से भी कविताएँ लिखी थीं। सन् 1936 में सिंहल में 'विद्यालंकार परिवेण' में ही 'नागार्जुन' नाम ग्रहण किया। आरंभ में उनकी हिन्दी कविताएँ भी 'यात्री' के नाम से ही छपी थीं। वस्तुत: कुछ मित्रों के आग्रह पर 1941 ईस्वी के बाद उन्होंने हिन्दी में नागार्जुन के अलावा किसी नाम से न लिखने का निर्णय लिया था।

नागार्जुन की पहली प्रकाशित रचना एक मैथिली कविता थी जो 1929 ई. में लहेरियासराय, दरभंगा से प्रकाशित 'मिथिला' नामक पत्रिका में छपी थी। उनकी पहली हिन्दी रचना 'राम के प्रति' नामक कविता थी जो 1934 ई. में लाहौर से निकलने वाले साप्ताहिक 'विश्वबन्धु' में छपी थी।

नागार्जुन लगभग अड़सठ वर्ष (सन् 1929 से 1997) तक रचनाकर्म से जुड़े रहे। कविता, उपन्यास, कहानी, संस्मरण, यात्र-वृत्तांत, निबन्ध, बाल-साहित्य-सभी विधाओं में उन्होंने कलम चलायी। मैथिली एवं संस्कृत के

अतिरिक्त बांग्ला से भी वे जुड़े रहे। बांग्ला भाषा और साहित्य से नागार्जुन का लगाव शुरू से ही रहा। काशी में रहते हुए उन्होंने अपने छात्र जीवन में बांग्ला साहित्य को मूल बांग्ला में पढ़ना शुरू किया। मौलिक रूप से बांग्ला लिखना फरवरी 1978 ई. में शुरू किया और सितंबर 1979 ई. तक लगभग 50 कविताएँ लिखी जा चुकी थीं। कुछ रचनाएँ बांग्ला की पत्र-पत्रिकाओं में भी छपीं। कुछ हिंदी की लघु पत्रिकाओं में लिप्यंतरण और अनुवाद सहित प्रकाशित हुईं। मौलिक रचना के अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत, मैथिली और बांग्ला से अनुवाद कार्य भी किया। कालिदास उनके सर्वाधिक प्रिय कवि थे और 'मेघदूत' प्रिय पुस्तक। मेघदूत का मुक्तछंद में अनुवाद उन्होंने 1953 ई. में किया था। जयदेव के 'गीत गोविंद' का भावानुवाद वे 1948 ई. में ही कर चुके थे। वस्तुतः 1944 और 1954 ई. के बीच नागार्जुन ने अनुवाद का काफी काम किया। बांग्ला उपन्यासकार शरतचंद्र के कई उपन्यासों और कथाओं का हिंदी अनुवाद छपा भी। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के उपन्यास 'पृथ्वीवल्लभ' का गुजराती से हिंदी में अनुवाद 1945 ई. में किया था। 1965 ई. में उन्होंने विद्यापति के सौ गीतों का भावानुवाद किया था। बाद में विद्यापति के और गीतों का भी उन्होंने अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने विद्यापति की 'पुरुष-परीक्षा' (संस्कृत) की तेरह कहानियों का भी भावानुवाद किया था जो 'विद्यापति की कहानियाँ' नाम से 1964 ई. में प्रकाशित हुई थी।

प्रकाशित कृतियाँ

कविता-संग्रह

- युगधारा-1953
- सतरंगे पंखों वाली-1959
- प्यासी पथराई आँखें-1962
- तालाब की मछलियाँ-1974
- तुमने कहा था-1980
- खिचड़ी विप्लव देखा हमने-1980
- हजार-हजार बाँहों वाली-1981
- पुरानी जूतियों का कोरस-1983
- रत्नगर्भ-1984

- ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या!!-1985
- आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने-1986
- इस गुब्बारे की छाया में-1990
- भूल जाओ पुराने सपने-1994
- अपने खेत में-1997

प्रबंध काव्य

- भस्मांकुर-1970
- भूमिजा

उपन्यास

- रतिनाथ की चाची-1948
- बलचनमा-1952
- नयी पौध-1953
- बाबा बटेसरनाथ-1954
- वरुण के बेटे-1956-57
- दुखमोचन-1956-57
- कुंभीपाक-1960 (1972 में 'चम्पा' नाम से भी प्रकाशित)
- हीरक जयन्ती-1962 (1979 में 'अभिनन्दन' नाम से भी प्रकाशित)
- उग्रतारा-1963
- जमनिया का बाबा-1968 (इसी वर्ष 'इमरतिया' नाम से भी प्रकाशित)
- गरीबदास-1990 (1979 में लिखित)

संस्मरण

- एक व्यक्ति: एक युग-1963

कहानी संग्रह

- आसमान में चन्दा तैरे-1982

आलेख संग्रह

- अन्नहीनम् क्रियाहीनम्-1983
- बम्भोलेनाथ-1987

बाल साहित्य

- कथा मंजरी भाग-1-1958
- कथा मंजरी भाग-2-
- मर्यादा पुरुषोत्तम राम-1955 (बाद में 'भगवान राम' के नाम से तथा अब 'मर्यादा पुरुषोत्तम' के नाम से प्रकाशित)
- विद्यापति की कहानियाँ-1964

मैथिली रचनाएँ

- चित्र (कविता-संग्रह)-1949
- पत्रहीन नग्न गाछ-1967
- पका है यह कटहल-1995 ('चित्र' एवं 'पत्रहीन नग्न गाछ' की सभी कविताओं के साथ 52 असंकलित मैथिली कविताएँ हिंदी पद्यानुवाद सहित)
- पारो (उपन्यास)-1946
- नवतुरिया-1954
- बांग्ला रचनाएँ-
- मैं मिलिट्री का बूढ़ा घोड़ा-1997 (देवनागरी लिप्यंतर के साथ हिंदी पद्यानुवाद)

संचयन एवं समग्र

- नागार्जुन रचना संचयन-सं.-राजेश जोशी (साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली से)
- नागार्जुन–चुनी हुई रचनाएँ-तीन खण्ड (वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से)
- नागार्जुन रचनावली-2003, सात खण्डों में, सं. शोभाकांत (राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली से)

नागार्जुन पर केंद्रित विशिष्ट साहित्य

- नागार्जुन का रचना-संसार–विजय बहादुर सिंह (प्रथम संस्करण-1982, संभावना प्रकाशन, हापुड़ से, पुनर्प्रकाशन-2009, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से)

- नागार्जुन की कविता–अजय तिवारी, (संशोधित संस्करण-2005) वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से),
- नागार्जुन का कवि-कर्म–खगेंद्र ठाकुर (प्रथम संस्करण-2013, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नयी दिल्ली से),
- जनकवि हूँ मैं – संपादक–रामकुमार कृषक (प्रथम संस्करण-2012) 'अलाव' के नागार्जुन जन्मशती विशेषांक का संशोधित पुस्तकीय रूप, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, नयी दिल्ली से),
- नागार्जुन–अंतरंग और सृजन-कर्म-संपादक-मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, चंचल चौहान 'नया पथ' के नागार्जुन जन्मशती विशेषांक का संशोधित पुस्तकीय रूप, (लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद से),
- आलोचना सहस्राब्दी अंक 43 (अक्टूबर-दिसंबर 2011), संपादक-अरुण कमल,
- तुमि चिर सारथि यात्री नागार्जुन आख्यान तारानंद वियोगी (मैथिली से अनुवाद-केदार कानन, अविनाश) (पहले 'पहल' पुस्तिका के रूप में फिर अंतिका प्रकाशन, दिल्ली से)।

पुरस्कार

- साहित्य अकादमी पुरस्कार-1969 (मैथिली में, 'पत्र हीन नग्न गाछ' के लिए),
- भारत भारती सम्मान (उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ द्वारा),
- मैथिलीशरण गुप्त सम्मान (मध्य प्रदेश सरकार द्वारा),
- राजेन्द्र शिखर सम्मान-1994 (बिहार सरकार द्वारा),
- साहित्य अकादमी की सर्वोच्च फेलोशिप से सम्मानित,
- राहुल सांकृत्यायन सम्मान पश्चिम बंगाल सरकार से।

समालोचना

नागार्जुन के काव्य में अब तक की पूरी भारतीय काव्य-परंपरा ही जीवंत रूप में उपस्थित देखी जा सकती है। उनका कवि-व्यक्तित्व कालिदास और विद्यापति जैसे कई कालजयी कवियों के रचना-संसार के गहन अवगाहन, बौद्ध एवं मार्क्सवाद जैसे बहुजनोन्मुख दर्शन के व्यावहारिक अनुगमन तथा सबसे बढ़कर अपने समय और परिवेश की समस्याओं, चिन्ताओं एवं संघर्षों से प्रत्यक्ष

जुड़ाव तथा लोकसंस्कृति एवं लोकहृदय की गहरी पहचान से निर्मित है। उनका 'यात्रीपन' भारतीय मानस एवं विषय-वस्तु को समग्र और सच्चे रूप में समझने का साधन रहा है। मैथिली, हिन्दी और संस्कृत के अलावा पालि, प्राकृत, बांग्ला, सिंहली, तिब्बती आदि अनेकानेक भाषाओं का ज्ञान भी उनके लिए इसी उद्देश्य में सहायक रहा है। उनका गतिशील, सक्रिय और प्रतिबद्ध सुदीर्घ जीवन उनके काव्य में जीवंत रूप से प्रतिध्वनित-प्रतिबिंबित है। नागार्जुन सही अर्थों में भारतीय मिट्टी से बने आधुनिकतम कवि हैं। उन्होंने आजादी के पहले और बाद में भी कई बड़े जनांदोलनों में भाग लिया था। 1939 से 1942 के बीच बिहार में किसानो के एक प्रदर्शन का नेतृत्व करने की वजह से जेल में रहे। आजादी के बाद लम्बे समय तक वो पत्रकारिता से भी जुड़े रहे। जन संघर्ष में अडिग आस्था, जनता से गहरा लगाव और एक न्यायपूर्ण समाज का सपना, ये तीन गुण नागार्जुन के व्यक्तित्व में ही नहीं, उनके साहित्य में भी घुले-मिले हैं। निराला के बाद नागार्जुन अकेले ऐसे कवि हैं, जिन्होंने इतने छंद, इतने ढंग, इतनी शैलियाँ और इतने काव्य रूपों का इस्तेमाल किया है। पारंपरिक काव्य रूपों को नए कथ्य के साथ इस्तेमाल करने और नए काव्य कौशलों को संभव करनेवाले वे अद्वितीय कवि हैं। उनके कुछ काव्य शिल्पों में ताक-झाँक करना हमारे लिए मूल्यवान हो सकता है। उनकी अभिव्यक्ति का ढंग तिर्यक भी है, बेहद ठेठ और सीधा भी। अपनी तिर्यकता में वे जितने बेजोड़ हैं, अपनी वाग्मिता में वे उतने ही विलक्षण हैं। काव्य रूपों को इस्तेमाल करने में उनमें किसी प्रकार की कोई अंतर्बाधा नहीं है। उनकी कविता में एक प्रमुख शैली स्वगत में मुक्त बातचीत की शैली है। नागार्जुन की ही कविता से पद उधार लें तो कह सकते हैं-'स्वागत शोक में बीज निहित हैं विश्व व्यथा के'।

भाषा पर बाबा का गजब अधिकार है। देसी बोली के ठेठ शब्दों से लेकर संस्कृतनिष्ठ शास्त्रीय पदावली तक उनकी भाषा के अनेकों स्तर हैं। उन्होंने तो हिन्दी के अलावा मैथिली, बांग्ला और संस्कृत में अलग से बहुत लिखा है। जैसा पहले भाव-बोध के संदर्भ में कहा गया, वैसे ही भाषा की दृष्टि से भी यह कहा जा सकता है कि बाबा की कविताओं में कबीर से लेकर धूमिल तक की पूरी हिन्दी काव्य-परंपरा एक साथ जीवंत है। बाबा ने छंद से भी परहेज नहीं किया, बल्कि उसका अपनी कविताओं में क्रांतिकारी ढंग से इस्तेमाल करके दिखा दिया। बाबा की कविताओं की लोकप्रियता का एक आधार उनके द्वारा किया गया छंदों का सधा हुआ चमत्कारिक प्रयोग भी है।

समकालीन प्रमुख हिंदी साहित्यकार **उदय प्रकाश** के अनुसार "यह जोर देकर कहने की जरूरत है कि बाबा नागार्जुन बीसवीं सदी की हिंदी कविता के सिर्फ 'भदेस' और मात्र विद्रोही मिजाज के कवि ही नहीं, वे हिंदी जाति के सबसे अद्वितीय मौलिक बौद्धिक कवि थे। वे सिर्फ 'एजिट पोएट' नहीं, पारंपरिक भारतीय काव्य परंपरा के विरल 'अभिजात' और 'एलीट पोएट' भी थे।" उदय प्रकाश ने बाबा नागार्जुन के व्यक्तित्व-निर्माण एवं कृतित्व की व्यापक महत्ता को एक साथ संकेतित करते हुए एक ही महावाक्य में लिखा है कि "खुद ही विचार करिये, जिस कवि ने बौद्ध दर्शन और मार्क्सवाद का गहन अध्ययन किया हो, राहुल सांकृत्यायन और आनंद कौसल्यायन जैसी प्रचंड मेधाओं का साथी रहा हो, जिसने प्राचीन भारतीय चिंतन परंपरा का ज्ञान पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत जैसी भाषाओं में महारत हासिल करके प्राप्त किया हो, जिस कवि ने हिंदी, मैथिली, बंगला और संस्कृत में लगभग एक जैसा वाग्वैदग्ध्य अर्जित किया हो, अपनी मूल प्रज्ञा और संज्ञान में जो तुलसी और कबीर की महान संत परंपरा के निकटस्थ हो, जिस रचनाकार ने 'बलचनमा' और 'वरुण के बेटे' जैसे उपन्यासों के द्वारा हिंदी में आंचलिक उपन्यास लेखन की नींव रखी हो, जिसके चलते हिंदी कथा साहित्य को रेणु जैसी ऐतिहासिक प्रतिभा प्राप्त हुई हो, जिस कवि ने अपने आक्रांत निजी जीवन ही नहीं बल्कि अपने समूचे दिक् और काल की, राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय घटनाक्रमों और व्यक्तित्व पर अपनी निर्भ्रांत कलम चलाई हो, (संस्कृत में) बीसवीं सदी के किसी आधुनिक राजनीतिक व्यक्तित्व (लेनिन) पर समूचा खण्डकाव्य रच डाला हो, जिसके हैंडलूम के सस्ते झोले में मेघदूतम् और 'एकॉनमिक पॉलिटिकल वीकली' एक साथ रखे मिलते हों, जिसकी अंग्रेजी भी किसी समकालीन हिंदी कवि या आलोचक से बेहतर ही रही हो, जिसने रजनी पाम दत्त, नेहरू, बर्तोल्त ब्रेख्ट, निराला, लूशुन से लेकर विनोबा, मोरारजी, जेपी, लोहिया, केन्याता, एलिजाबेथ, आइजन हावर आदि पर स्मरणीय और अत्यंत लोकप्रिय कविताएं लिखी हों-बीसवीं सदी की हिंदी कविता का प्रतिनिधि बौद्धिक कवि वह है।

बाबा नागार्जुन को भावबोध और कविता के मिजाज के स्तर पर सबसे अधिक निराला और कबीर के साथ जोड़कर देखा गया है। वैसे, यदि जरा और व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो नागार्जुन के काव्य में अब तक की पूरी भारतीय काव्य-परंपरा ही जीवंत रूप में उपस्थित देखी जा सकती है। उनका कवि-व्यक्तित्व कालिदास और विद्यापति जैसे कई कालजयी कवियों के रचना-संसार के गहन

अवगाहन, बौद्ध एवं मार्क्सवाद जैसे बहुजनोन्मुख दर्शन के व्यावहारिक अनुगमन तथा सबसे बढ़कर अपने समय और परिवेश की समस्याओं, चिन्ताओं एवं संघर्षों से प्रत्यक्ष जुड़ाव तथा लोकसंस्कृति एवं लोकहृदय की गहरी पहचान से निर्मित है। उनका 'यात्रीपन' भारतीय मानस एवं विषय-वस्तु को समग्र और सच्चे रूप में समझने का साधन रहा है। मैथिली, हिन्दी और संस्कृत के अलावा पालि, प्राकृत, बांग्ला, सिंहली, तिब्बती आदि अनेकानेक भाषाओं का ज्ञान भी उनके लिए इसी उद्देश्य में सहायक रहा है। उनका गतिशील, सक्रिय और प्रतिबद्ध सुदीर्घ जीवन उनके काव्य में जीवंत रूप से प्रतिध्वनित-प्रतिबिंबित है। नागार्जुन सही अर्थों में भारतीय मिट्टी से बने आधुनिकतम कवि हैं।

बाबा नागार्जुन ने जब लिखना शुरू किया था तब हिन्दी साहित्य में छायावाद उस चरमोत्कर्ष पर था, जहाँ से अचानक तेज ढलान शुरू हो जाती है, और जब उन्होंने लिखना बंद किया तब काव्य जगत में सभी प्रकार के वादों के अंत का दौर चल रहा था। बाबा अपने जीवन और सर्जन के लंबे कालखंड में चले सभी राजनीतिक एवं साहित्यिक वादों के साक्षी रहे, कुछ से संबद्ध भी हुए, पर आबद्ध वह किसी से नहीं रहे। उनके राजनीतिक 'विचलनों' की खूब चर्चा भी हुई। पर कहने की जरूरत नहीं कि उनके ये तथाकथित 'विचलन' न सिर्फ जायज थे बल्कि जरूरी भी थे। वह जनता की व्यापक राजनीतिक आकांक्षा से जुड़े कवि थे, न कि मात्र राजनीतिक पार्टियों के संकीर्ण दायरे में आबद्ध सुविधाजीवी कामरेड। कोई राजनीतिक पार्टी जब जनता की राजनीतिक आकांक्षा की पूर्ति के मार्ग से विचलित हो जाए तो उस राजनीतिक पार्टी से 'विचलित' हो जाना विवेक का सूचक है, न कि 'विपथन' का। प्रो. मैनेजर पांडेय ने सही टिप्पणी की है कि एक जनकवि के रूप में नागार्जुन खुद को जनता के प्रति जवाबदेह समझते हैं, किसी राजनीतिक दल के प्रति नहीं। इसलिए जब वे साफ ढंग से सच कहते हैं तो कई बार वामपंथी दलों के राजनीतिक और साहित्यिक नेताओं को भी नाराज करते हैं। जो लोग राजनीति और साहित्य में सुविधा के सहारे जीते हैं वे दुविधा की भाषा बोलते हैं। नागार्जुन की दृष्टि में कोई दुविधा नहीं है, यही कारण है कि खतरनाक सच साफ बोलने का वे खतरा उठाते हैं।"

अपनी एक कविता "प्रतिबद्ध हूँ" में उन्होंने दो टूक लहजे में अपनी दृष्टि को स्पष्ट किया है-

प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ-
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त-

संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ
अविवेकी भीड़ की 'भेड़िया-धसान' के खिलाफ
अंध-बधिर 'व्यक्तियों' को सही राह बतलाने के लिए
अपने आप को भी 'व्यामोह' से बारंबार उबारने की खातिर
प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, शतधा प्रतिबद्ध हूँ!

नागार्जुन का संपूर्ण काव्य-संसार इस बात का प्रमाण है कि उनकी यह प्रतिबद्धता हमेशा स्थिर और अक्षुण्ण रही, भले ही उन्हें विचलन के आरोपों से लगातार नवाजा जाता रहा। उनके समय में छायावाद, प्रगतिवाद, हालावाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, अकविता, जनवादी कविता और नवगीत आदि जैसे कई काव्य-आंदोलन चले और उनमें से ज्यादातर कुछ काल तक सरगर्मी दिखाने के बाद चलते बने। पर बाबा की कविता इनमें से किसी 'चौखटे' में अँट कर नहीं रही, बल्कि हर 'चौखटे' को तोड़कर आगे का रास्ता दिखाती रही। उनके काव्य के केन्द्र में कोई 'वाद' नहीं रहा, बजाय इसके वह हमेशा अपने काव्य-सरोकार 'जन' से ग्रहण करते रहे। उन्होंने किसी बँधी-बँधायी लीक का निर्वाह नहीं किया, बल्कि अपने काव्य के लिए स्वयं की लीक का निर्माण किया। इसीलिए बदलते हुए भावबोध के बदलते धरातल के साथ नागार्जुन को विगत सात दशकों की अपनी काव्य-यात्रा के दौरान अपनी कविता का बुनियादी भाव-धरातल बदलने की जरूरत महसूस नहीं हुई। "पछाड़ दिया मेरे आस्तिक ने" जैसी कविता में 'बाबा का काव्यात्मक डेविएशन' भी सामान्य जनोचित है और असल में, वही उस कविता के विशिष्ट सौंदर्य का आधार भी है। उनकी वर्ष 1939 में प्रकाशित आरंभिक दिनों की एक कविता 'उनको प्रणाम' में जो भाव-बोध है, वह वर्ष 1998 में प्रकाशित उनके अंतिम दिनों की कविता 'अपने खेत में' के भाव-बोध से बुनियादी तौर पर समान है। आज इन दोनों कविताओं को एक साथ पढ़ने पर, यदि उनके प्रकाशन का वर्ष मालूम न हो तो यह पहचानना मुश्किल होगा कि उनके रचनाकाल के बीच तकरीबन साठ वर्षों का फासला है। जरा इन दोनों कविताओं की एक-एक बानगी देखें-

जो नहीं हो सके पूर्ण-काम
मैं उनको करता हूँ प्रणाम
जिनकी सेवाएँ अतुलनीय
पर विज्ञापन से रहे दूर
प्रतिकूल परिस्थिति ने जिनके

कर दिए मनोरथ चूर-चूर!
-उनको प्रणाम!
और 'अपने खेत में' कविता का यह अंश देखें-
अपने खेत में हल चला रहा हूँ
इन दिनों बुआई चल रही है
इर्द-गिर्द की घटनाएँ ही
मेरे लिए बीज जुटाती हैं
हाँ, बीज में घुन लगा हो तो
अंकुर कैसे निकलेंगे!
जाहिर है
बाजा: बीजों की
निर्मम छँटाई करूँगा
खाद और उर्वरक और
सिंचाई के साधनों में भी
पहले से जियादा ही
चौकसी बरतनी है
मकबूल फिदा हुसैन की
चौंकाऊ या बाजा: टेकनीक
हमारी खेती को चौपट
कर देगी!
जी, आप
अपने रूमाल में
गाँठ बाँध लो, बिल्कुल!!

बाबा की कविताएँ अपने समय के समग्र परिदृश्य की जीवंत एवं प्रामाणिक दस्तावेज हैं। उदय प्रकाश ने सही संकेत किया है कि बाबा नागार्जुन की कविताएँ प्रख्यात इतिहास चिंतक डी.डी. कोसांबी की इस प्रस्थापना का कि 'इतिहास लेखन के लिए काव्यात्मक प्रमाणों को आधार नहीं बनाया जाना चाहिए', अपवाद सिद्ध होती हैं। वह कहते हैं कि 'हम उनकी रचनाओं के प्रमाणों से अपने देश और समाज के पिछले कई दशकों के इतिहास का पुनर्लेखन कर सकते हैं।' कहने की जरूरत नहीं कि इस तरह का दावा बीसवीं सदी के किसी भी दूसरे हिन्दी कवि के संबंध में नहीं किया जा सकता, स्वयं निराला के संबंध

में भी निश्चिंत होकर नहीं। बाबा को अपनी बात कहने के लिए कभी आड़ की जरूरत नहीं पड़ी और उन्होंने जो कुछ कहा है उसका संदर्भ सीधे-सीधे वर्तमान से लिया है। उनकी कविता कोई बात घुमाकर नहीं कहती, बल्कि सीधे-सहज ढंग से कह जाती है। उनके अलावा, आधुनिक हिन्दी साहित्य में इस तरह की विशेषता केवल गद्य-विधा के दो शीर्षस्थ लेखकों, आजादी से पूर्व के दौर में प्रेमचन्द और आजादी के बाद के दौर में हरिशंकर परसाई, में रेखांकित की जा सकती है। बाबा की कविताओं में यह खासियत इसीलिए भी आई है कि उनका काव्य-संघर्ष उनके जीवन-संघर्ष से तदाकार है और दोनों के बीच किसी 'अबूझ-सी पहेली' का पर्दा नहीं लटका है मुक्तिबोध की कविताओं के विचार-धरातल की तरह। उनका संघर्ष अंतर्द्वंद्व, कसमसाहट और अनिश्चितता भरा संघर्ष नहीं है, बल्कि खुले मैदान का, निर्द्वंद्व, आर-पार का खुला संघर्ष है और इस संघर्ष के समूचे घटनाक्रम को बाबा मानो अपनी डायरी की तरह अपनी कविताओं में दर्ज करते गए हैं।

बाबा ने अपनी कविताओं का भाव-धरातल सदा सहज और प्रत्यक्ष यथार्थ रखा, वह यथार्थ जिससे समाज का आम आदमी रोज जूझता है। यह भाव-धरातल एक ऐसा धरातल है जो नाना प्रकार के काव्य-आंदोलनों से उपजते भाव-बोधों के अस्थिर धरातल की तुलना में स्थायी और अधिक महत्त्वपूर्ण है। हालाँकि उनकी कविताओं की 'तात्कालिकता' के कारण उसे अखबारी कविता कहकर खारिज करने की कोशिशें भी हुई हैं, लेकिन असल में, यदि एजरा पाउंड के शब्दों में कहें तो नागार्जुन की कविता ऐसी खबर है जो हमेशा ताजा ही रहती है। वह अखबारी खबर की तरह कभी बासी नहीं होती। उनकी कविता के इस 'टटकेपन' का कारण बकौल नामवर सिंह 'व्यंग्य की विदग्धता' है। नामवर सिंह कहते हैं-

व्यंग्य की इस विदग्धता ने ही नागार्जुन की अनेक तात्कालिक कविताओं को कालजयी बना दिया है, जिसके कारण वे कभी बासी नहीं हुईं और अब भी तात्कालिक बनी हुई हैं। इसलिए यह निर्विवाद है कि कबीर के बाद हिन्दी कविता में नागार्जुन से बड़ा व्यंग्यकार अभी तक कोई नहीं हुआ। नागार्जुन के काव्य में व्यक्तियों के इतने व्यंग्यचित्र हैं कि उनका एक विशाल अलबम तैयार किया जा सकता है।

दरअसल, नागार्जुन की कविताओं को अखबारी कविता कहने वाले शायद यह समझ ही नहीं पाते कि उनकी तात्कालिकता में ही उनके कालजयी होने का

राज छिपा हुआ है और वह राज यह है कि तात्कालिकता को ही उन कविताओं में रचनात्मकता का सबसे बड़ा हथियार बनाया गया है। उनकी कई प्रसिद्ध कविताएँ जैसे कि 'इंदुजी, इंदुजी क्या हुआ आपको', 'आओ रानी, हम ढोएंगे पालकी', 'अब तो बंद करो हे देवी, यह चुनाव का प्रहसन' और 'तीन दिन, तीन रात' आदि इसका बेहतरीन प्रमाण हैं। असल में, बात यह है कि नागार्जुन की कविता, जैसा कि कई अन्य महान रचनाकारों की रचनाओं के संबंध में भी कहा गया है, आम पाठकों के लिए सहज है, मगर विद्वान आलोचकों के लिए उलझन में डालने वाली हैं। ये कविताएँ जिनको संबोधित हैं उनको तो झट से समझ में आ जाती हैं, पर कविता के स्वनिर्मित प्रतिमानों से लैस पूर्वग्रही आलोचकों को वह कविता ही नहीं लगती। ऐसे आलोचक उनकी कविताओं को अपनी सुविधा के लिए तात्कालिक राजनीति संबंधी, प्रकृति संबंधी और सौंदर्य-बोध संबंधी आदि जैसे कई खाँचों में बाँट देते हैं और उनमें से कुछ को स्वीकार करके बाकी को खारिज कर देना चाहते हैं। वे उनकी सभी प्रकार की कविताओं की एक सर्वसामान्य भावभूमि की तलाश ही नहीं कर पाते, क्योंकि उनकी आँखों पर स्वनिर्मित प्रतिमानों से बने पूर्वग्रह की पट्टी बँधी होती है।

बाबा के लिए कवि-कर्म कोई आभिजात्य शौक नहीं, बल्कि 'खेत में हल चलाने' जैसा है। वह कविता को रोटी की तरह जीवन के लिए अनिवार्य मानते हैं। उनके लिए सर्जन और अर्जन में भेद नहीं है। इसलिए उनकी कविता राजनीति, प्रकृति और संस्कृति, तीनों को समान भाव से अपना उपजीव्य बनाती है। उनकी प्रेम और प्रकृति संबंधी कविताएँ उसी तरह भारतीय जनचेतना से जुड़ती हैं, जिस तरह से उनकी राजनीतिक कविताएँ। बाबा नागार्जुन, कई अर्थों में, एक साथ सरल और बीहड़, दोनों तरह के कवि हैं। यह विलक्षणता भी कुछ हद तक निराला के अलावा बीसवीं सदी के शायद ही किसी अन्य हिन्दी कवि में मिलेगी! उनकी बीहड़ कवि-दृष्टि रोजमर्रा के ही उन दृश्यों-प्रसंगों के जरिए वहाँ तक स्वाभाविक रूप से पहुँच जाती है, जहाँ दूसरे कवियों की कल्पना-दृष्टि पहुँचने से पहले ही उलझ कर रह जाए! उनकी एक कविता 'पैने दाँतोंवाली' की ये पंक्तियाँ देखिए-

धूप में पसरकर लेटी है
मोटी-तगड़ी, अधेड़, मादा सुअर
जमना-किनारे
मखमली दूबों पर

पूस की गुनगुनी धूप में
पसरकर लेटी है
वह भी तो मादरे हिंद की बेटी है
भरे-पूरे बारह थनोंवाली!

यों, बीहड़ता कई दूसरे कवियों में भी है, पर इतनी स्वाभाविक कहीं नहीं है। यह नागार्जुन के कवि-मानस में ही संभव है जहाँ सरलता और बीहड़ता, दोनों एक-दूसरे के इतने साथ-साथ उपस्थित हैं। इसी के साथ उनकी एक और विशेषता भी उल्लेखनीय है, जिसे **डॉ. रामविलास शर्मा** ने सही शब्दों में रेखांकित करते हुए कहा है-

"नागार्जुन ने लोकप्रियता और कलात्मक सौंदर्य के संतुलन और सामंजस्य की समस्या को जितनी सफलता से हल किया है, उतनी सफलता से बहुत कम कवि-हिन्दी से भिन्न भाषाओं में भी-हल कर पाए हैं।"

बाबा की कविताओं की लोकप्रियता का तो कहना ही क्या! बाबा उन विरले कवियों में से हैं जो एक साथ कवि-सम्मेलन के मंचों पर भी तालियाँ बटोरते रहे और गंभीर आलोचकों से भी समादृत होते रहे। बाबा के इस जादुई कमाल के बारे में खुद उन्हीं की जुबानी यह दिलचस्प उद्धरण सुनिए-

"कवि-सम्मेलनों में बहुत जमते हैं हम। समझ गए ना? बहुत विकट काम है कवि-सम्मेलन में कविता सुनाना। बड़े-बड़ों को, तुम्हारा, क्या कहते हैं, हूट कर दिया जाता है। हम कभी हूट नहीं हुए। हर तरह का माल रहता है, हमारे पास। यह नहीं जमेगा, वह जमेगा। काका-मामा सबकी छुट्टी कर देते हैं हम। समझ गए ना?"

उनकी एक अत्यंत प्रसिद्ध कविता 'अकाल और उसके बाद' लोकप्रियता और कलात्मक सौंदर्य के मणिकांचन संयोग का एक उल्लेखनीय उदाहरण है।

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।
दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन के ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद।

इस तरह की बाबा की दर्जनों खूबसूरत कविताएँ हैं जो इस दृष्टि से उनके समकालीन तमाम कवियों की कविताओं से विशिष्ट कही जा सकती हैं। कलात्मक सौंदर्य की कविताएँ शमशेर ने भी खूब लिखी हैं, पर वे लोकप्रिय नहीं हैं। लोकप्रिय कविताएँ धूमिल की भी हैं पर उनमें कलात्मक सौंदर्य का वह स्तर नहीं है, जो नागार्जुन की कविताओं में है। बाबा की कविताओं में आखिर यह विलक्षण विशेषता आती कहाँ से है? दरअसल, बाबा की प्रायः सभी कविताएँ संवाद की कविताएँ हैं और यह संवाद भी एकहरा और सपाट नहीं है। वह हजार-हजार तरह से संवाद करते हैं, अपनी कविताओं में। आज कविता के संदर्भ में संप्रेषण की जिस समस्या पर इतनी चिंता जताई जा रही है, वैसी कोई समस्या बाबा की कविताओं को व्यापती ही नहीं। सुप्रसिद्ध समकालीन कवि **केदारनाथ सिंह** स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं–

"स्वाधीनता के बाद के कवियों में यह विशेषता केवल नागार्जुन के यहाँ दिखाई पड़ती है। यह बात दूसरे प्रगतिशील कवियों के संदर्भ में नहीं कही जा सकती।"

बाबा की कविताओं की इसी विशेषता के एक अन्य कारण की चर्चा करते हुए केदारनाथ सिंह कहते हैं कि बाबा अपनी कविताओं में 'बहुत से लोकप्रिय काव्य-रूपों को अपनाते हैं और उन्हें सीधे जनता के बीच से ले आते हैं।' उनकी 'मंत्र कविता' देहातों में झाड़-फूँक करके उपचार करने वाले ओझा की शैली में है।

ओं भैरो, भैरो, भैरो, ओं बजरंगबली
ओं बंदूक का टोटा, पिस्तौल की नली
ओं डालर, ओं रूबल, ओं पाउंड
ओं साउंड, ओं साउंड, ओं साउंडओम् ओम् ओम्
ओम् धरती, धरती, धरती, व्योम् व्योम व्योम्
ओं अष्टधातुओं की ईंटों के भट्ठे
ओं महामहिम, महामहो, उल्लू के पट्ठे
ओं दुर्गा दुर्गा दुर्गा तारा तारा तारा
ओं इसी पेट के अंदर समा जाए सर्वहारा
हरिः ओं तत्सत् हरिः ओं तत्सत्

भाषा पर बाबा का गजब अधिकार है। देसी बोली के ठेठ शब्दों से लेकर संस्कृतनिष्ठ शास्त्रीय पदावली तक उनकी भाषा के अनेकों स्तर हैं। उन्होंने तो

हिन्दी के अलावा मैथिली, बांग्ला और संस्कृत में अलग से बहुत लिखा है। जैसा पहले भाव-बोध के संदर्भ में कहा गया, वैसे ही भाषा की दृष्टि से भी यह कहा जा सकता है कि बाबा की कविताओं में कबीर से लेकर धूमिल तक की पूरी हिन्दी काव्य-परंपरा एक साथ जीवंत है। बाबा ने छंद से भी परहेज नहीं किया, बल्कि उसका अपनी कविताओं में क्रांतिकारी ढंग से इस्तेमाल करके दिखा दिया। बाबा की कविताओं की लोकप्रियता का एक आधार उनके द्वारा किया गया छंदों का सधा हुआ चमत्कारिक प्रयोग भी है। उनकी मशहूर कविता "आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी" की ये पंक्तियाँ देखिए–

यह तो नई-नई दिल्ली है, दिल में इसे उतार लो
एक बात कह दूँ मलका, थोड़ी-सी लाज उधार लो
बापू को मत छेड़ो, अपने पुरखों से उपहार लो
जय ब्रिटेन की जय हो इस कलिकाल की!
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!
रफू करेंगे फटे-पुराने जाल की!
यही हुई है राय जवाहरलाल की!
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!

नागार्जुन की भाषा और उनके छंद मौके के अनुरूप बड़े कलात्मक ढंग से बदल जाया करते हैं। यदि हम अज्ञेय, शमशेर या मुक्तिबोध की कविताओं को देखें तो उनमें भाषा इस कदर बदलती नहीं है। ये कवि अपने प्रयोग प्रतीकों और बिम्बों के स्तर पर करते हैं, भाषा की जमीन के स्तर पर नहीं। उनके समकालीन कवि त्रिलोचन शास्त्री ने मुक्तिबोध और नागार्जुन की कविताओं की तुलना करते हुए एक बार कहा था–

"मुक्तिबोध की कविताओं का अनुवाद अंग्रेजी या यूरोप की दूसरी भाषाओं में करना ज्यादा आसान है, क्योंकि उसकी भाषा भले भारतीय है, पर उसमें मानसिकता का प्रभाव पश्चिम से आता है, लेकिन नागार्जुन की कविताओं का यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद बहुत कठिन होगा। यदि ऐसी कोशिश भी हो तो तीन-चार पंक्तियों के अनुवाद के बाद 'फुटनोट' से पूरा पन्ना भरना पड़ेगा।"

यही असल में बाबा की कविताओं के ठेठ भारतीय और मौलिक धरातल की पहचान है, जो उन्हें अपने समकालीन दौर के कई प्रमुख कवियों-जैसे अज्ञेय, शमशेर और मुक्तिबोध से अलग भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित करता है। इसी से जुड़ी एक बात और। ये कवि मुख्य रूप से साहित्य के आंदोलनों से, वह भी

पश्चिम-प्रेरित आंदोलनों से प्रभावित होकर कविता करते रहे, जबकि नागार्जुन भारतीय जनता के आंदोलनों से प्रेरित और प्रभावित होकर, या यों कहें कि उनमें शामिल होकर कविता करते रहे हैं। बाबा भले ही वामपंथी विचारधारा से जुड़े थे, परंतु उनकी यह विचारधारा भी नितांत रूप से भारतीय जनाकांक्षा से जुड़ी हुई थी। यही कारण है कि वर्ष 1962 और 1975 में जब अधिकांश भारतीय 'कम्यूनिस्ट' रहस्यमय चुप्पी साधकर बैठे रहे थे, तब बाबा ने उग्र जनप्रतिक्रिया को अपनी कविताओं के माध्यम से स्वर दिया था। इन्हीं मौकों पर बाबा ने ''पुत्र हूँ भारत माता का", "और कुछ नहीं, हिन्दुस्तानी हूँ महज", "क्रांति तुम्हारी तुम्हें मुबारक", "कम्युनिज्म के पंडे", "कट्टर कामरेड उवाच" तथा "इन्दुजी, इन्दुजी क्या हुआ आपको" जैसी कविताएँ लिखी थीं।

बाबा की कविताओं की भाव-भूमि प्रयोगवादी और नई कविता की भाव-भूमि से काफी भिन्न है, क्योंकि इन प्रवृत्तियों की ज्यादातर कविताएँ समाज-निरपेक्ष और आत्मपरक हैं, जबकि बाबा की कविताएँ समाज-सापेक्ष और जनोन्मुख हैं। उनके समकालीन कवियों की रचनाओं के संदर्भ में देखने पर यह बात ज्यादा साफ तौर पर समझ में आती है कि बाबा की कविता का बदलते भाव-बोध के बदलते धरातल के साथ किस तरह का रिश्ता रहा है, अर्थात् यह उन सबसे किस हद तक जुड़ती है और किस हद तक अलग होती है।

अज्ञेय और शमशेर जैसे कवियों की रचनाएँ कलावादी (art for art's sake) भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित हैं, जबकि नागार्जुन की कविताएँ जीवनवादी (art for life's sake) भाव-भूमि पर। यह अंतर इन दोनों तरह की कविताओं के कथ्य, शिल्प और भाषा-तीनों स्तर पर देखा जा सकता है। निराला की उत्तरवर्ती दौर वाली कुछ कविताएँ, जैसे 'कुकुरमुत्ता' और 'तोड़ती पत्थर' भी जनवादी भाव-भूमि के करीब हैं। दोनों का मूल स्वर प्रगतिशील चेतना से सरोकार रखता है। निराला जहाँ खत्म करते हैं, बाबा वहाँ से शुरू करते हैं।

रघुवीर सहाय और श्रीकांत वर्मा की कविताओं की भाव-भूमि बुनियादी रूप से बाबा की कविताओं से भिन्न है और यह भिन्नता मूलतः प्रतिबद्धता एवं सरोकार से संबंधित है। फिर भी, इन तीनों कवियों की काव्य-चेतना के बीच एक अंतर्संबंध भी है, जिसे रेखांकित करते हुए **इब्बार रब्बी** कहते हैं-

वह समाज जो आदमी का शोषण कर रहा है, उसकी मानसिकता को उजागर करते हैं "अप्रत्यक्ष रूप से श्रीकांत वर्माय। उसके स्रोतों की पोल खोलते हैं रघुवीर सहाय, और उससे लड़ना सिखाते हैं नागार्जुन।"

इस अंतर और अंतर्संबंध को इससे भी बेहतर ढंग से समझने के लिए इन तीनों कवियों का वर्ष 1975 के 'आपातकाल' के प्रति नजरिया देखना महत्त्वपूर्ण होगा। श्रीकांत वर्मा आपातकाल के पक्ष में खड़े थे, रघुवीर सहाय 'हँसो, हँसो जल्दी हँसो' जैसी कविताओं के माध्यम से सांकेतिक प्रतिवाद कर रहे थे, जबकि बाबा नागार्जुन न सिर्फ तीखे तेवर वाली कविताएँ लिखकर, बल्कि स्वयं आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेकर और जेल की सजा भुगतकर आपातकाल का विरोध कर रहे थे। इसी तरह यदि हम मुक्तिबोध की कविता से बाबा की कविताओं की तुलना करें तो पाते हैं कि मुक्तिबोध की कविता गहन विचारशीलता और स्वातंत्र्योत्तर भारत के मध्यवर्गीय चरित्र में निहित सुविधाजीविता और आदर्शवादिता के बीच के अंतर्द्वन्द्व की कविता है, जिसमें आम आदमी का संघर्ष आत्मसंघर्ष के रूप में है। मुक्तिबोध अपने समय के संघर्षों से सैद्धांतिक स्तर पर जुड़ते हैं, दार्शनिक अंदाज में। जबकि नागार्जुन की कविता 'अनुभवजन्य भावावेग से प्रेरित' है और आत्म-संघर्ष की बजाय खुले संघर्ष के स्वर में है। वह अपने समय के संघर्षों से व्यावहारिक धरातल पर जुड़ते हैं, एक सक्रिय योद्धा की तरह।

बाबा की कविताएँ सौंदर्य के भाव-बोध और भाषा-शैली आदि के स्तर पर सबसे अधिक केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन शास्त्री की कविताओं की भाव-भूमि के करीब हैं। इन तीनों कवियों के बुनियादी संस्कार और सरोकार काफी हद तक एक जैसे हैं और इसी वजह से तीनों एक धारा के कवि माने जाते हैं। फिर भी, बाबा की कविताएँ बाबा की कविताएँ हैं और वे केदार एवं त्रिलोचन की कविताओं की तुलना में अपनी अलग छाप छोड़ती हैं।

'बादल को घिरते देखा है'
अमल धवल गिरि के शिखरों पर,
बादल को घिरते देखा है।
छोटे-छोटे मोती जैसे
उसके शीतल तुहीन कणों को,
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।
तुंग हिमालय के कंधों पर
छोटी बड़ी कई झीलें हैं,

उनके श्यामल नील सलिल में
समतल देशों से आ-आकर
पावस की ऊमस से आकुल
तिक्त-मधुर बिसतंतु खोजते
हंसों को तिरते देखा है।
बादल को घिरते देखा है।

मैथिली गीत, 'श्यामघटा, सित बीजुरि-रेह'

श्याम घटा, सित बीजुरि-रेह
अमृत टघार राहु अवलेह
फाँक इजोतक तिमिरक थार
निबिड़ विपिन अति पातर धार
दारिद उर लछमी जनु हार
लोहक चादरि चानिक तार
देखल रहि रहि तड़ित-विलास
जुगुलकिशोरक उन्मद रास।

2

सुमित्रानन्दन पन्त

आज भले ही हिन्दी साहित्य में छायावादी युग का अवसान हो चुका हो, किन्तु यह सत्य है कि हिन्दी कविता छायावाद के एक अत्यन्त समृद्ध व सम्पन्न दौर से गुजरी है। हिन्दी में जब कभी छायावाद की चर्चा होती है, तब उसके चार सुदृढ स्तम्भों के रूप में प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा तथा सुमित्रानंदन पंत को याद किया जाता है। ये चारों उस युग के कवि हैं, जब हिन्दी कविता घुटनों के बल चलना सीख रही थी। सुमित्रानंदन ने जब लिखना शुरू किया, उस समय मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवि मौजूद होने के बावजूद हिन्दी को कविता की भाषा के रूप में मान्यता तक प्राप्त नहीं थी। प्रसाद व निराला के साथ मिलकर पंत ने हिन्दी को कविता की न केवल सौम्य, सुकुमार और सशक्त भाषा के रूप में एक सर्वथा नवीन प्रतिष्ठा दिलवाई बल्कि हिन्दी काव्य के लिए एक बिल्कुल नई शैली भी ईजाद की।

पंत जी की रचनाओं के बारे में प्रायः यह प्रश्न उठाया जाता रहा है कि वह संसारमुखी व यथार्थवादी होने के बदले रूमानी और अति आत्मकेन्द्रित क्यों है ? वस्तुतः यह हमारी समूची सांस्कृतिक विरासत का ही मूल तत्त्व व मौलिक स्वर है। हिन्दी कविता छायावादी युग के उस दौर में अपने प्रसव-संकट के समय उस आदि साँचे की ओर लौट गई, जो सदियों से भारतीय चेतना का मूल मातृ साँचा रहा है।

प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत अल्मोड़ा जिले के कोसानी नामक स्थान पर 20 मई 1900 को जन्मे। कवि और पीड़ा के शाश्वत रिश्ते की सत्यता उनके जन्म के कुछ ही घंटों के बाद माँ की मृत्यु के रूप में प्रकट हुई। माँ के अभाव ने बालक सुमित्रानंदन को अपने पिता के बहुत अधिक निकट ला दिया। पिता गंगादत्त जी कोसानी में चाय बागानों की मैनेजरी के अलावा लकड़ी का कारोबार भी करते थे। आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी, किन्तु युवावस्था में ही पत्नी के बिछोह से वह जीवन के प्रति विरक्त हो उठे। विरक्ति के बावजूद वह बालक सुमित्रानंदन से अत्यधिक स्नेह रखते थे।

पंत जी का बाल्यकाल अल्मोड़ा में उनके पिता द्वारा बनवाए गए शानदार व विशाल मकान में बीता। सन् 1905 में वह विद्याध्ययन हेतु कोसानी पाठशाला में दाखिल किए गए। संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान उन्हें अपने फूफा से प्राप्त हुआ। नौ वर्ष की अल्पायु में बालक पंत ने मेघदूत, अमरकोश, चाणक्य आदि संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन पूर्ण कर लिया था। पंडित अम्बादत्त जोशी से पंत जी ने फारसी तथा अपने पिता से अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की।

दस वर्ष की आयु में शिक्षा प्राप्ति के उद्देश्य से पंत जी अल्मोड़ा आए। यह उनके मानसिक विकास की दिशा में महत्त्वपूर्ण मोड़ था। इस दौरान वह स्वामी सत्यदेव के सम्पर्क में आए, जिन्होंने पंत जी के विचारों को एक साहित्यिक एवं राष्ट्रवादी स्पर्श प्रदान किया। पंत जी ने अल्मोड़ा में ही विधिवत हिन्दी साहित्य का अध्ययन प्रारम्भ किया। इस बीच उन्हें इलाचन्द्र जोशी, गोविन्दवल्लभ पंत और श्यामचरण पंत जैसे मित्र मिले। साहित्यिक गतिविधियों के कारण उनकी पढ़ाई-लिखाई प्रभावित तो अवश्य हुई किन्तु फिर भी बदस्तूर चलती रही। उन्होंने अल्मोड़ा में नौवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की।

इस दौरान उन्होंने अपना नाम गोसाई दत्त से बदल कर सुमित्रानंदन पंत रख लिया। पंत जी ने कक्षा सातवीं या आठवीं में अध्ययन के दौरान ही कविकर्म को अपनाने का निश्चय कर लिया था।

एक बार सुमित्रानंदन पंत अपने पिता के साथ नैनीताल गए। वहाँ की प्राकृतिक सुषमा से प्रभावित होकर उन्होंने अपनी प्रथम रचना 'हार' लिखी। इस उपन्यास में नैनीताल के प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

पन्द्रह वर्ष की आयु में पंत जी ने पद्य और छंदों में अभिनव प्रयोग करते हुए अनेक रचनाएँ लिखीं। उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ समसामयिक विषयों व

प्राकृतिक सौन्दर्य पर केन्द्रित थीं। ये रचनाएँ 'सुधाकर', 'मर्यादा' तथा अल्मोड़ा के स्थानीय अखबारों में छपती थीं।

अगस्त 1918 में पंत जी ने बनारस के जयनारायण हाई स्कूल में प्रवेश लिया। इसी साल गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर वहाँ पधारे। पंत जी उनसे बहुत प्रभावित हुए। अगले वर्ष वह इंटर की परीक्षा पास करने प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कॉलेज आ गए, जहाँ उन्हें रामचन्द्र जी टंडन, परशुराम चतुर्वेदी, फिराक गोरखपुरी आदि हस्तियों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला। सन् 1921 में असहयोग आन्दोलन के दौरान गाँधी जी के आह्वान पर पंत जी ने कॉलेज छोड़ दिया।

सन् 1926-27 में पंत जी की पहली पुस्तक 'पल्लव' के नाम से प्रकाशित हुई। इस समय आर्थिक रूप से पंत जी के परिवार की स्थिति अत्यधिक नाजुक थी। सारी जमापूँजी खर्च हो चुकी थी। हजारों रुपयों के कर्ज को चुकाने में जमीन जायदाद व घर का सामान तक बिक चुका था। 1927 में बड़े भाई रघुदत्त जी की मृत्यु ने पंत जी को अन्दर तक हिला कर रख दिया। पंत जी के पिता अपने बड़े पुत्र की मृत्यु के सदमे को सहन नहीं कर पाए और डेढ साल बाद ही परलोक सिधार गए। संवेदनशील व भावुक पंत के लिए यह बहुत गहरा आघात था, जिसके कारण वह लम्बे समय तक अस्त-व्यस्त रहे।

सन् 1930 में पंत अपने भाई देवीदत्त के साथ अल्मोड़ा आ गए। यहाँ उन्होंने फ्रायड, साम्यवाद, मार्क्सवाद आदि का गहन अध्ययन किया। वह मार्क्स के आर्थिक चिंतन से बेहद प्रभावित हुए। पूरनचन्द जोशी के सानिध्य में रहकर उनके विचारों में परिपक्वता आई। इस दौरान उन्होंने कवि के कल्पनाशील मन के लिए यथार्थ की नई जमीन तोड़ी। इस सम्बन्ध में पंत जी कहते हैं–'मेरे पाठक इस तथ्य से परिचित हैं कि काला कंकर के ग्राम जीवन के महान् सम्पर्क का प्रभाव मेरी समूची जीवन दृष्टि का एक अनिवार्य अंग बन चुका है। युगवाणी और ग्राम्या ही में नहीं, उसके बाद की रचनाओं में भी किसी न किसी रूप में और लोकायतन में विशेष रूप से उस दृष्टि की व्यापक छाप देखने को मिलती है। '

पंत जी ने अपने भावों और विचारों को मूर्तरूप प्रदान करने के दृष्टिकोण से 'लोकायतन' नामक संस्था की शुरुआत की, किन्तु इसमें कुछ समय उन्हें खास कामयाबी नहीं मिली। पांडिचेरी के अरविन्द आश्रम में कुछ समय रहने के बाद पंत जी ने स्वयं को अरविन्द-दर्शन से अभिभूत पाया। अरविन्द विचारशृंखला का क्रमबद्ध अध्ययन करने के बाद पंत जी की जीवन दृष्टि ने और व्यापक

आधारभूमि पाई। युगान्त, युगवाणी, स्वर्णकिरण आदि रचनाएँ उनके यथार्थोन्मुख रुख की ओर इंगित करती हैं।

सन् 1938 में पंत जी ने 'रूपाभ' नामक एक प्रगतिशील मासिक पत्र का संपादन भार संभाला। रघुपति सहाय, शिवदानसिंह चौहान, शमशेर जैसे लोगों के सम्पर्क में आने के बाद वह प्रगतिशील लेखक संघ से जुडे।

1955 से 1962 तक सुमित्रानंदन पंत आकाशवाणी के मुख्य प्रोड्यूसर के पद पर बने रहे। 1961 में उन्हें भारत सरकार के उच्च राष्ट्रीय सम्मान 'पद्मभूषण' से अलंकृत किया गया।

सन् 1969 में सुमित्रानंदन पंत को उनकी काव्य कृति 'चिदम्बरा' के लिए देश के सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार 'ज्ञानपीठ' से सम्मानित किया गया। 'चिदम्बरा' को वर्ष 1968 की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक कृति घोषित करते हुए कहा गया कि कवि पंत की ये काव्य रचनाएँ युग के संघर्षों की पृष्ठभूमि में नई सौन्दर्यबोध भावना, भौतिक प्रगति और आध्यात्मिक विकास की शक्तियों के समन्वय से प्रसूत नैतिकता की धारा एवं उन्नत मनुष्यत्व की चेतना को रूपायित करती है। कवि पंत हिन्दी काव्य में आधुनिक युग के प्रवर्तकों तथा अभिनव काव्य-चेतना के प्रेरकों में अग्रगण्य हैं।

आजीवन अविवाहित रहे हिन्दी साहित्य के इस महत्त्वपूर्ण लेखक ने तीन नाटक, एक कहानी संग्रह, एक उपन्यास, एक संस्मरण संकलन सहित करीब चालीस पुस्तकें लिखीं, जो उनकी निरन्तर सृजनशीलता को रेखांकित करती हैं। 'उच्छ्वास', 'गुंजन', 'वीणा' आदि छायावादी कृतियों से शुरू हुआ यह साहित्यिक सफर अरविन्द-दर्शन और साम्यवादी युग-चेतना से प्रभावित ग्रंथों 'युगांत', 'स्वर्णकिरण', 'उत्तरा', 'पतझड', 'शिल्पी' में सिमटता हुआ 'कला और बूढा चाँद' जैसी यथार्थवादी रचना तक पहुँचा। इस रचना पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला। 77 वर्ष की आयु में सुमित्रानंदन पंत का निधन हो गया, जो सचमुच हिन्दी साहित्य जगत् की अपूरणीय क्षति था।

साहित्यिक परिचय

अल्मोड़ा में तब कई साहित्यिक व सांस्कृतिक गतिविधियां होती रहती थीं, जिनमें पंत अक्सर भाग लेते रहते। स्वामी सत्यदेव जी के प्रयासों से नगर में 'शुद्ध साहित्य समिति' नाम से एक पुस्तकालय चलता था। इस पुस्तकालय से पंत जी को उच्च कोटि के विद्वानों का साहित्य पढ़ने को मिलता था। कौसानी में साहित्य

के प्रति पंत जी में जो अनुराग पैदा हुआ वह यहां के साहित्यिक वातावरण में अब अंकुरित होने लगा। कविता का प्रयोग वे सगे सम्बन्धियों को पत्र लिखने में करने लगे। शुरुआती दौर में उन्होंने 'बागेश्वर के मेले', 'वकीलों के धनलोलुप स्वभाव' व 'तम्बाकू का धुंआ' जैसी कुछ छुटपुट कविताएं लिखी। आठवीं कक्षा के दौरान ही उनका परिचय प्रख्यात नाटककार गोविन्द बल्लभ पंत, श्यामाचरण दत्त पंत, इलाचन्द्र जोशी व हेमचन्द्र जोशी से हो गया था। अल्मोड़ा से तब हस्तलिखित पत्रिका 'सुधाकर' व 'अल्मोड़ा अखबार' नामक पत्र निकलता था जिसमें वे कविताएं लिखते रहते। अल्मोड़ा में पंत जी के घर के ठीक ऊपर स्थित गिरजाघर की घण्टियों की आवाज उन्हें अत्यधिक सम्मोहित करती थीं। अक्सर प्रत्येक रविवार को वे इस पर एक कविता लिखते। 'गिरजे का घण्टा' शीर्षक से उनकी यह कविता सम्भवतः पहली रचना है-

नभ की उस नीली चुप्पी पर घण्टा है एक टंगा सुन्दर
जो घड़ी घड़ी मन के भीतर कुछ कहता रहता बज बज कर

दुबले पतले व सुन्दर काया के कारण पंत जी को स्कूल के नाटकों में अधिकतर स्त्री पात्रों का अभिनय करने को मिलता। 1916 में जब वे जाड़ों की छुट्टियों में कौसानी गये तो उन्होंने 'हार' शीर्षक से 200 पृष्ठों का 'एक खिलौना' उपन्यास लिख डाला। जिसमें उनके किशोर मन की कल्पना के नायक नायिकाओं व अन्य पात्रों की मौजूदगी थी। कवि पंत का किशोर कवि जीवन कौसानी व अल्मोड़ा में ही बीता था। इन दोनों जगहों का वर्णन भी उनकी कविताओं में मिलता है।

स्वतंत्रता संग्राम में योगदान

1921 के असहयोग आंदोलन में उन्होंने कॉलेज छोड़ दिया था, पर देश के स्वतंत्रता संग्राम की गंभीरता के प्रति उनका ध्यान 1930 के नमक सत्याग्रह के समय से अधिक केंद्रित होने लगा, इन्हीं दिनों संयोगवश उन्हें कालाकांकर में ग्राम जीवन के अधिक निकट संपर्क में आने का अवसर मिला। उस ग्राम जीवन की पृष्ठभूमि में जो संवेदन उनके हृदय में अंकित होने लगे, उन्हें वाणी देने का प्रयत्न उन्होंने युगवाणी (1938) और ग्राम्या (1940) में किया। यहाँ से उनका काव्य, युग का जीवन-संघर्ष तथा नई चेतना का दर्पण बन जाता है। स्वर्णकिरण तथा उसके बाद की रचनाओं में उन्होंने किसी आध्यात्मिक या दार्शनिक सत्य को वाणी न देकर व्यापक मानवीय सांस्कृतिक तत्त्व को

अभिव्यक्ति दी, जिसमें अन्न प्राण, मन आत्मा, आदि मानव-जीवन के सभी स्वरों की चेतना को संयोजित करने का प्रयत्न किया गया।

काव्य एवं साहित्य की साधना

पंतजी संघर्षों के एक लंबे दौर से गुजरे, जिसके दौरान स्वयं को काव्य एवं साहित्य की साधना में लगाने के लिए उन्होंने अपनी आजीविका सुनिश्चित करने का प्रयास किया। बहुत पहले ही उन्होंने यह समझ लिया था कि उनके जीवन का लक्ष्य और कार्य यदि कोई है, तो वह काव्य साधना ही है। पंत की भाव-चेतना महाकवि रबींद्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी और श्री अरबिंदो घोष की रचनाओं से प्रभावित हुई। साथ ही कुछ मित्रों ने मार्क्सवाद के अध्ययन की ओर भी उन्हें प्रवृत किया और उसके विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पक्षों को उन्होंने गहराई से देखा व समझा। 1950 में रेडियो विभाग से जुड़ने से उनके जीवन में एक ओर मोड़ आया। सात वर्ष उन्होंने 'हिन्दी चीफ प्रोड्यूसर' के पद पर कार्य किया और उसके बाद साहित्य सलाहकार के रूप में कार्यरत रहे।

युग प्रवर्तक कवि

सुमित्रानंदन पंत आधुनिक हिन्दी साहित्य के एक युग प्रवर्तक कवि हैं। उन्होंने भाषा को निखार और संस्कार देने, उसकी सामर्थ्य को उद्घाटित करने के अतिरिक्त नवीन विचार व भावों की समृद्धि दी। पंत सदा ही अत्यंत सशक्त और ऊर्जावान कवि रहे हैं। सुमित्रानंदन पंत को मुख्यत: प्रकृति का कवि माना जाने लगा। लेकिन पंत वास्तव में मानव-सौंदर्य और आध्यात्मिक चेतना के भी कुशल कवि थे।

रचनाकाल

पंत का पल्लव, ज्योत्सना तथा गुंजन का रचनाकाल काल (1926-33) उनकी सौंदर्य एवं कला-साधना का काल रहा है। वह मुख्यत: भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण की आदर्शवादिता से अनुप्राणिक थे। किंतु युगांत (1937) तक आते-आते बहिर्जीवन के खिंचाव से उनके भावात्मक दृष्टिकोण में परिवर्तन आए। पन्तजी की रचनाओं का क्षेत्र बहुविध और बहुआयामी है।

आपकी रचनाओं सा संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

महाकाव्य1

'लोकायतन' कवि सुमित्रानन्दन पन्त का महाकाव्य है। कवि की विचारधारा और लोक-जीवन के प्रति उसकी प्रतिबद्धता इस रचना में अभिव्यक्त हुई है। इस पर कवि को 'सोवियत रूस' तथा उत्तर प्रदेश शासन से पुरस्कार प्राप्त हुआ है। पंत जी को अपने माता-पिता के प्रति असीम-सम्मान था। इसलिए उन्होंने अपने दो महाकाव्यों में से एक महाकाव्य 'लोकायतन' अपने पूज्य पिता को और दूसरा महाकाव्य 'सत्यकाम' अपनी स्नेहमयी माता को, जो इन्हें जन्म देते ही स्वर्ग सिधार गईं, समर्पित किया है। अपनी माँ सरस्वती देवी को स्मरण करते हुए इन्होंने अपना दूसरा महाकाव्य 'सत्यकाम' जिन शब्दों के साथ उन्हें समर्पित किया है, वे द्रष्टव्य हैं-

मुझे छोड़ अनगढ़ जग में तुम हुई अगोचर,
भाव-देह धर लौटीं माँ की ममता से भर!
वीणा ले कर में, शोभित प्रेरणा-हंस पर,
साध चेतना-तंत्रि रसौ वै सः झंकृत कर
खोल हृदय में भावी के सौन्दर्य दिगंतर!
काव्य-संग्रह

'वीणा', 'पल्लव' तथा 'गुंजन' छायावादी शैली में सौन्दर्य और प्रेम की प्रस्तुति है। 'युगान्त', युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में पन्तजी के प्रगतिवादी और यथार्थपरक भावों का प्रकाशन हुआ है। 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्ण-धूलि', 'युगपथ', 'उत्तरा', 'अतिमा', तथा 'रजत-रश्मि' संग्रहों में अरविन्द-दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है। इनके अतिरिक्त 'कला और बूढ़ा चाँद' तथा 'चिदम्बरा' भी आपकी सम्मानित रचनाएँ हैं। पन्तजी की अन्तर्दृष्टि तथा संवेदनशीलता ने जहाँ उनके भाव-पक्ष को गहराई और विविधता प्रदान की हैं, वहीं उनकी कल्पना-प्रबलता और अभिव्यक्ति-कौशल ने उनके कला-पक्ष को सँवारा है।

रचनाएँ

चिदंबरा 1958 का प्रकाशन है। इसमें युगवाणी (1937-38) से अतिमा (1948) तक कवि की 10 कृतियों से चुनी हुई 196 कविताएं संकलित हैं। एक लंबी आत्मकथात्मक कविता आत्मिका भी इसमें सम्मिलित है, जो वाणी (1957) से ली गई है। चिदंबरा पंत की काव्य चेतना के द्वितीय उत्थान की परिचायक है। प्रमुख रचनाएं इस प्रकार है-

- कविताएं
- वीणा (1919)
- ग्रंथि (1920)
- पल्लव (1926)
- गुंजन (1932)
- युगांत (1937)
- युगवाणी (1938)
- ग्राम्या (1940)
- स्वर्णकिरण (1947)
- कविताएं
- स्वर्णधूलि (1947)
- उत्तरा (1949)
- युगपथ (1949)
- चिदंबरा (1958)
- कला और बूढ़ा चाँद (1959)
- लोकायतन (1964)
- गीतहंस (1969)।
- कहानियाँ
- पाँच कहानियाँ (1938)
- उपन्यास
- हार (1960),
- आत्मकथात्मक संस्मरण
- साठ वर्ष–एक रेखांकन (1963)।

साहित्यिक विशेषताएँ

छायावाद को मुख्यत: 'प्रेरणा का काव्य' मानने वाले इस कोमल-प्राण कवि ने 'हार' नामक उपन्यास के लेखन से अपनी रचना-यात्रा आरंभ की थी, जो 'मुक्ताभ' के प्रणयन तक जारी रही। मुख्यत: कवि-रूप में प्रसिद्ध होने के अलावा ये 'प्रथम कोटि के आलोचक, विचारक और गद्यकार' थे। इन्होंने मुक्तक, लंबी कविता, गद्य-नाटिका, पद्य-नाटिका, रेडियो-रूपक, एकांकी, उपन्यास, कहानी इत्यादि जैसी विभिन्न विधाओं में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं

और लोकायतन तथा सत्यकाम जैसे वृहद महाकाव्य भी लिखे हैं। विधाओं की विविधता की दृष्टि से इनके द्वारा संपादित 'रूपाभ पत्रिका' (सन् 1938 ईस्वी) की संपादकीय टिप्पणियाँ और मधुज्वाल की भावानुवादाश्रित कविताएँ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। आशय यह कि विभिन्न विधाओं में उपलब्ध इनके विपुल साहित्य को एक नातिदीर्घ रचना-संचयन में प्रस्तुत करना कठिन कार्य है। रचनाओं की विपुलता के साथ ही यह भी लक्ष्य करने योग्य है कि प्रकृति और नारी-सौंदर्य से रचनारंभ करनेवाले पंत जी मानव, सामान्य जन और समग्र मानवता की कल्याण-कामना से सदैव जुड़े रहे। इनकी मान्यता थी कि 'आने वाला मानव निश्चिय ही न पूर्व का होगा, न पश्चिम का।' ये सार्वभौम मनुष्यता के विश्वासी थे। अध्यात्म, अंतश्चेतना, प्रेम, समदिक् संचरण इत्यादि जैसा संकल्पनाओं से भावाकुल पंत के लेखन-चिन्तन का केन्द्र-बिन्दु हमेशा 'लोक' पक्ष ही रहा, जो लोकायतन के नामकरण से भी संकेतित होता है। पंत-काव्य का तृतीय चरण, जो 'नवीन सगुण' के नाम से चर्चित है और जिसे हम शुभैषणा-सदिच्छा का स्वस्ति-काव्य कह सकते हैं, इसी 'लोक' के मंगल पर केन्द्रित है।

प्रकृति-प्रेमी कवि

'उच्छास' से लेकर 'गुंजन' तक की कविता का सम्पूर्ण भावपट कवि की सौन्दर्य-चेतना का काल है। सौन्दर्य-सृष्टि के उनके प्रयत्न के मुख्य उपादान हैं-प्रकृति, प्रेम और आत्म-उद्बोधन। अल्मोड़ा की प्राकृतिक सुषमा ने उन्हें बचपन से ही अपनी ओर आकृष्ट किया। ऐसा प्रतीत होता है जैसे माँ की ममता से रहित उनके जीवन में मानो प्रकृति ही उनकी माँ हो। पर्वतीय अंचल में पले बढ़े पंत जी स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि उस मनोरम वातावरण का इनके व्यक्तित्व पर गंभीर प्रभाव पड़ा। कवि या कलाकार कहां से प्रेरणा ग्रहण करता है इस बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए पंत जी कहते हैं कि संभवत: प्रेरणा के स्रोत भीतर न होकर अधिकतर बाहर ही रहते हैं। अपनी काव्य यात्रा में पन्त जी सदैव सौन्दर्य को खोजते नजर आते हें। शब्द, शिल्प, भाव और भाषा के द्वारा कवि पंत प्रकृति और प्रेम के उपादानों से एक अत्यंत सूक्ष्य और हृदयकारी सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं, किंतु उनके शब्द केवल प्रकृति-वर्णन के अंग न होकर एक दूसरे अर्थ की गहरी व्यंजना से संयोजित हैं। उनकी रचनाओं में छायावाद एवं रहस्यवाद का समावेश भी है। साथ ही शेली, कीट्स, टेनिसन आदि अंग्रेजी कवियों का प्रभाव भी है। 'मेरे मूक कवि को बाहर लाने का सर्वाधिक श्रेय मेरी

जन्मभूमि के उस नैसर्गिक सौन्दर्य को है, जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ, जिसने छुटपन से ही मुझे अपने रूपहले एकांत में एकाग्र तन्मयता के रश्मिदोलन में झुलाया, रिझाया तथा कोमल कण्ठ वन-पखियों ने साथ बोलना कुहुकना सिखाया।'

भाव पक्ष

पन्तजी के भाव-पक्ष का एक प्रमुख तत्त्व उनका मनोहारी प्रकृति चित्रण है। कौसानी की सौन्दर्यमयी प्राकृतिक छटा के बीच पन्तजी ने अपनी बाल-कल्पनाओं को रूपायित किया था। प्रकृति के प्रति उनका सहज आकर्षण उनकी रचनाओं के बहुत बड़े भाग को प्रभावित किए हुए है। प्रकृति के विविध आयामों और भंगिमाओं को हम पन्त के काव्य में रूपांकित देखते हैं। वह मानवी-कृता सहेली है, भावोद्दीपिका है, अभिव्यक्ति का आलम्बन है और अलंकृता प्रकृति-वधू भी है। इसके अतिरिक्त प्रकृति कवि पन्त के लिए उपदेशिका और दार्शनिक चिन्तन का आधार भी बनी है। कवि पन्त को सामान्यतया कोमल-कान्त भावनाओं और सौन्दर्य का कवि समझा जाता है, किन्तु जीवन के यथार्थों से सामना होने पर कवि में जीवन के प्रति यथार्थपरक और दार्शनिक दृष्टिकोण का विकास होता गया है। सर्वप्रथम पन्त मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हुए, जिसका प्रभाव उनकी 'युगान्त', 'युगवाणी' आदि रचनाओं में परिलक्षित होता है। गाँधीवाद से भी आप प्रभावित दिखते हैं। 'लोकायतन' में यह प्रभाव विद्यमान है। महर्षि अरविन्द की विचारधारा का भी आप पर गहरा प्रभाव पड़ा। 'गीत-विहग' रचना इसका उदाहरण है। सौन्दर्य और उल्लास के कवि पन्त को जीवन का निराशामय विरूप-पक्ष भी भोगना पड़ा और इसकी प्रतिक्रिया 'परिवर्तन' नामक रचना में दृष्टिगत होती है-

अखिल यौवन के रंग उभार हड्डियों के हिलते कंकाल,
खोलता इधर जन्म लोचन मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण।

पन्तजी के काव्य में मानवतावादी दृष्टि को भी सम्मानित स्थान प्राप्त है। वह मानवीय प्रतिष्ठा और मानव-जाति के भावी विकास में दृढ़ विश्वास रखते हैं। 'द्रुमों की छाया' और 'प्रकृति की माया' को छोड़कर जो पन्त 'बाला के बाल-जाल' में 'लोचन उलझाने' को प्रस्तुत नहीं थे, वही मानव को विधाता की सुन्दरतम कृति स्वीकार करते हैं-

सुन्दर है विहग सुमन सुन्दर, मानव तुम सबसे सुन्दरतम।

वह चाहते हैं कि देश, जाति और वर्गों में विभाजित मनुष्य की केवल एक ही पहचान हो–मानव।

भाषा–शैली

कवि पन्त का भाषा पर असाधारण अधिकार है। भाव और विषय के अनुकूल मार्मिक शब्दावली उनकी लेखनी से सहज प्रवाहित होती है। यद्यपि पन्त की भाषा का एक विशिष्ट स्तर है फिर भी वह विषयानुसार परिवर्तित होती है। पन्तजी के काव्य में एकाधिक शैलियों का प्रयोग हुआ है। प्रकृति–चित्रण में भावात्मक, आलंकारिक तथा दृश्य विधायनी शैली का प्रयोग हुआ है। विचार–प्रधान तथा दार्शनिक विषयों की शैली विचारात्मक एवं विश्लेषणात्मक भी हो गई है। इसके अतिरिक्त प्रतीक–शैली का प्रयोग भी हुआ है। सजीव बिम्ब–विधान तथा ध्वन्यात्मकता भी आपकी रचना–शैली की विशेषताएँ हैं।

अलंकरण

पन्तजी ने परम्परागत एवं नवीन, दोनों ही प्रकार के अलंकारों का भव्यता से प्रयोग किया है। बिम्बों की मौलिकता तथा उपमानों की मार्मिकता हृदयहारिणी है। रूपक, उपमा, सांगरूपक, मानवीकरण, विशेषण–विपर्यय तथा ध्वन्यर्थ–व्यंजना का आकर्षक प्रयोग आपने किया है।

छंद

पन्तजी ने परम्परागत छन्दों के साथ–साथ नवीन छंदों की भी रचना की है। आपने गेयता और ध्वनि–प्रभाव पर ही बल दिया है, मात्राओं और वर्णों के क्रम तथा संख्या पर नहीं। प्रकृति के चितेरे तथा छायावादी कवि के रूप में पन्तजी का स्थान निश्चय ही विशिष्ट है। हिन्दी की लालित्यपूर्ण और संस्कारित खड़ी बोली भी पन्तजी की देन है। पन्तजी विश्व–साहित्य में भी अपना स्थान बना गए हैं।

पुरस्कार

सुमित्रानंदन पंत को पद्म भूषण (1961) और ज्ञानपीठ पुरस्कार (1968) से सम्मानित किया गया। कला और बूढ़ा चाँद के लिए साहित्य अकादमी

पुरस्कार, लोकायतन पर 'सोवियत लैंड नेहरु पुरस्कार' एवं 'चिदंबरा' पर इन्हें 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार' प्राप्त हुआ।

स्मृति विशेष

उत्तराखण्ड में कुमायूँ की पहाड़ियों पर बसे कौसानी गांव में, जहाँ उनका बचपन बीता था, वहां का उनका घर आज 'सुमित्रा नंदन पंत साहित्यिक वीथिका' नामक संग्रहालय बन चुका है। इस में उनके कपड़े, चश्मा, कलम आदि व्यक्तिगत वस्तुएं सुरक्षित रखी गई हैं। संग्रहालय में उनको मिले ज्ञानपीठ पुरस्कार का प्रशस्तिपत्र, हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा मिला साहित्य वाचस्पति का प्रशस्तिपत्र भी मौजूद है। साथ ही उनकी रचनाएं लोकायतन, आस्था आदि कविता संग्रह की पांडुलिपियां भी सुरक्षित रखी हैं। कालाकांकर के कुंवर सुरेश सिंह और हरिवंश राय बच्चन से किये गये उनके पत्र व्यवहार की प्रतिलिपियां भी यहां मौजूद हैं।

संग्रहालय में उनकी स्मृति में प्रत्येक वर्ष पंत व्याख्यान माला का आयोजन होता है। यहाँ से 'सुमित्रानंदन पंत व्यक्तित्व और कृतित्व' नामक पुस्तक भी प्रकाशित की गई है। उनके नाम पर इलाहाबाद शहर में स्थित हाथी पार्क का नाम 'सुमित्रानंदन पंत बाल उद्यान' कर दिया गया है।

3

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

तुलसीदास के बाद हिन्दी साहित्य में निराला ही एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने भारतीय काव्य मनीषा को ठीक से समझकर उसे युग अनुरूप प्रेरणादायी बनाया था। जैसे तुलसी ने फारसी के आतंक से हिन्दी को मुक्त कर भाषा के स्तर पर इतने प्रयोग किए कि वह हिन्दी साहित्य के लिए उपयोगी बन गयी। उन्होंने संस्कृत की कठिन शब्दावली को सहज और जनप्रिय छन्दों में ढाला। यही कारण है कि रामचरित मानस के प्रत्येक काण्ड का प्रारम्भ वे बोधगम्य संस्कृत में करते हैं। निराला ने भाषा और छन्द के स्तर पर हिन्दी में जो प्रयोग किए उन्हें तुलसीदास के प्रयोग से जोड़कर देखना उचित है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के युग के बाद और विशेषकर सरस्वती के प्रकाशन का वह कालखण्ड, जो आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के नाम से जाना जाता है, निराला भी इसी कालखण्ड में लेखन प्रारम्भ करते हैं। द्विवेदी जी जिस हिन्दी को विकसित करने में लगे रहे महाप्राण निराला जैसे अनेक साहित्यकारों और साहित्य प्रेमियों ने अपना सर्वस्व अर्पण किया। उसी हिन्दी को आगे बढ़ाने का दायित्व वर्तमान पीढ़यों का है। यह पितृऋण हमारे ऊपर है। इससे उऋण हुए बिना न तो हमारी मुक्ति है और न ही राष्ट्र की।

हिन्दी जिस रूप में आज हमारे सामने है उसमें निराला का बहुत बड़ा योगदान है। हीन ग्रंथि से पीड़ित हिन्दी समाज को अपनी भाषा और साहित्य पर इसलिए स्वाभिमान होना चाहिए, क्योंकि उसके पास विश्व का सबसे बड़ा कवि

तुलसीदास है। उन्हें इसलिए भी गौरव होना चाहिए, क्योंकि उनके पास सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जैसा साहित्यकार और पत्रकार उपलब्ध है। लेकिन यह दु:खद पक्ष है कि आज हिन्दी भाषी समाज इन मूल्यवान बिन्दुओं पर विचार नहीं कर रहा है। हमारा सोच इस स्तर तक कैसे पहुँच गया। इस पर विचार करते हुए निराला ने 'सुधा' पत्रिका के सम्पादकीय में सन् 1935 में लिखा था–हिन्दी साहित्यकारों ने हिन्दी के पीछे तो अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है पर हिन्दी भाषियों ने उनकी तरफ वैसा ध्यान नहीं दिया–शतांश भी नहीं। वे साहित्यिक इस समय जिन कठिनता का सामना कर रहे हैं, उसे देखकर किसी भी सहृदय की आँखों में आँसू आ जाएँगे। बदले में उन्हें अनधिकारी साहित्यिकों से लाँछन और असंस्कृत जनता से अनादर प्राप्त हो रहा है।

निराला का जन्म 21 फरवरी सन् 1899 में महिषादल में हुआ था। यह स्थान आज के बंगलादेश में आता है। यह समय देश की आजादी के लिए संघर्ष का समय था। अंग्रेज जान.बूझकर भारतीय संस्कृति और भाषा को नष्ट करने में लगे हुए थे। अंग्रेजों की रणनीति का यह महत्त्वपूर्ण हिस्सा रहा है कि वे जहाँ भी शासन करते थे, वहाँ की भाषाओं को नष्ट कर देते थे। **डॉ. रामविलास शर्मा** लिखते हैं 'साम्राज्यवाद से जहाँ भी बन पड़ा, उसने न केवल भाषाओं का, वरन् उन्हें बोलने वाली जातियों का भी नाश किया। अमरीकी महाद्वीपों में अजतेक और इंका जनों की सभ्यताएँ अत्यन्त विकसित थीं। अब वहाँ उनके ध्वंसावशेष ही रह गए हैं। रेड इंडियन जनों से उनकी भूमि छीन ली गयी, अमरीकी विश्वविद्यालयों में उनकी भाषाएँ शिक्षा का माध्यम नहीं है। अमरीकी नीग्रो अंग्रेजी बोलते हैं, उनके पुरखे कौन सी भाषा बोलते थे, यह वे नहीं जानते। दक्षिणी अफ्रिका, रोडेशिया, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, जहाँ भी साम्राज्यवादियों से बन पड़ा उन्होंने गुलाम बनाए हुए देशों के मूल निवासियों का नाश किया, उनकी भाषाओं और संस्कृतियों का दमन किया, 'निराला की साहित्य साधना, भाग.2, पृष्ठ 19)।

एक महान् चिन्तक की तरह निराला अपने समय की स्थिति पर निगाह रखे हुए थे तथा अपनी कविताओं और लेखों के द्वारा भारतीय जनमानस को यह बता रहे थे कि अंग्रेजी की पक्षधरता उन्हें कहाँ ले जाएगी। सन् 1930 में सुधा के सम्पादकीय में उन्होंने लिखा, 'भारतवर्ष अंग्रेजों की साम्राज्य लालसा का सर्वप्रधान ध्येय रहा है। यहाँ की सभ्यता और संस्कृति अंग्रेजों की सभ्यता और संस्कृति से बहुत कम मेल खाती थी, पर सात समुद्र पार से आकर इतने विस्तृत

और इतने सभ्य देश में राज्य करना जिन अंग्रेजों को अभीष्ट था, वे बिना अपनी कूटनीति का प्रयोग किए कैसे रह सकते थे–अंग्रेजों की नीति हुई–भारत के इतिहास को विकृत कर दो और हो सके तो उसकी भाषा को मिटा दो। चेष्टाएँ की जाने लगी। भारतीय सभ्यता और संस्कृति तुलना में नीची दिखायी जाने लगीं। हमारी भाषाएँ गँवारू, असाहित्यिक और अविकसित बताई जाने लगी। हमारा प्राचीन इतिहास अंधकार में डाल दिया गया। बाकायदा अंग्रेजी की पढ़ाई होने लगी। इस देश का शताब्दियों से अंधकार में पड़ा हुआ जन समाज समझने लगा कि जो कुछ है, अंग्रेजी सभ्यता है, अंग्रेजी साहित्य है और अंग्रेज हैं।'

निराला हिन्दी और संस्कृत के लिए निरन्तर संघर्ष करते रहे 'अनामिका' नाम की कविता संग्रह में 'मित्र के प्रति' कविता में उनके भाव देखे जा सकते हैं–

जला है जीवन यह आतप में दीर्घकाल
सूखी भूमि, सूखे तरु, सूखे शिक्त आलाव
बन्द हुआ गूँज, धूलि धूसर हो गए कुंज,
किन्तु पड़ी व्योम-उर बन्धु, नील-मेघ-माल।

जो काम देश की आजादी के लिए क्रांतिकारी लोग अपने स्तर पर कर रहे थे, साहित्य और भाषा के स्तर पर यही संघर्ष निराला लड़ रहे थे। और इससे भी अधिक वे दोनों स्तरों पर काम कर रहे थे। पूरे स्वतंत्रता आंदोलन में किसानों का जो एक मात्र आंदोलन हुआ था, इस आंदोलन में निराला ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। निराला के जीवन पर केन्द्रित पुस्तक निराला की साहित्य साधना भाग.1' 2 एवं 3 में डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला के भाषागत संघर्ष का सुन्दर चित्रण किया है। इस पुस्तक के विषय में कहा जाता है कि किसी कवि पर केन्द्रित विश्व की उत्कृष्ट रचना है। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं 'जला है जीवन यह–निराला का जीवन जला है, हिन्दी का जीवन जला है। निराला के मन की आशाएँ, उल्लास, विषाद्, निराशा, वीरतापूर्ण कर्म, त्रस, दु:स्वप्न यह सब कुछ कहीं न कहीं हिन्दी के इस आन्तरिक संघर्ष से जुड़ा हुआ है। निराला के बिना हिन्दी का यह संघर्ष नहीं समझा जा सकता, इस संघर्ष के बिना निराला नहीं समझे जा सकते, न व्यक्तित्व न कृतित्व। निराला का जीवन हिन्दीमय है, हिन्दी उनके लिए साहित्य साधना का माध्यम है अपने में यह साध्य है। भारत देश और इस देश की जनता की तरह निराला की आस्था, श्रद्धा, सर्वाधिक प्रेम का अधिष्ठान है भाषा। असह्य पीड़ा के क्षणों में वह सारा दु:ख 'यह हिन्दी का

प्रेमोपहार कह कर स्वीकार करते हैं।' (निराला की साहित्य साधना भाग.2, पृष्ठ 172)'।

हिन्दी को लेकर निराला उस समय के सबसे बड़े नेताओं से भी बातचीत कर अपनी चिन्ताएँ व्यक्त करते रहे। उन्होंने महात्मा गाँधी से भी हिन्दी के विकास को लेकर बातचीत की। गाँधी जी हिन्दी के प्रबल पक्षधर थे। स्वतंत्रता आन्दोलन में लगे हुए नेताओं में गाँधी ही एक ऐसे व्यक्ति थे जो राजनैतिक आजादी को भाषागत आजादी से जोड़कर देख रहे थे और यह कह रहे थे–'मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम भाषा को राष्ट्रीय और अपनी भाषाओं प्रान्तों में उनका योग्य स्थान नहीं देंगे, तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं।' (सन् 1935 में इन्दौर में दिए गए भाषण से) गाँधी के इसी देश में आज का ज्ञान आयोग यह मानता है कि बिना अंग्रेजी के राष्ट्र का विकास असम्भव है। ज्ञान आयोग और चाहे जो कुछ भी सोचे किन्तु उसकी यह सोच गाँधी और निराला की भाँति राष्ट्र के उन्नयन की बात नहीं सोच रही है। इसी भाँति वे पंडित जवाहरलाल नेहरू से भी हिन्दी के चिन्तन को लेकर आमने-सामने हुए। इस घटना का चित्रण करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है। '(यह चित्रण उस समय का है जब रावी नदी के तट पर पूर्ण स्वाधीनता की प्रतिज्ञा ली गई थी, जिसकी खुशी में पूरे देश में कार्यक्रम आयोजित हो रहे थे, जिनमें भाग लेने के लिए राष्ट्रीय नेता पूरे देश का भ्रमण कर रहे थे)'। जनता से विदा होने और गाड़ी के चलने पर जब नेहरू जी भीतर आकर बैठे तब निराला ने शुरू किया–"आपसे कुछ बातें करने की गरज से अपनी जगह से यहाँ आया हुआ हूँ।"

नेहरू ने कुछ न कहा। निराला ने अपना परिचय दिया। फिर हिन्दुस्तानी का प्रसंग छेड़ा, सूक्ष्म भाव प्रकट करने में हिन्दुस्तानी की असमर्थता जाहिर की। फिर एक चुनौती दी–"मैं हिन्दी के कुछ वाक्य आपको दूँगा जिनका अनुवाद आप हिन्दुस्तानी जबान में कर देंगे, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। इस वक्त आपको समय नहीं। अगर इलाहाबाद में आप मुझे आज्ञा करें, तो किसी वक्त मिलकर मैं आपसे उन पंक्तियों के अनुवाद के लिए निवेदन करूँ।"

जवाहरलाल नेहरू ने चुनौती स्वीकार न की, समय देने में असमर्थता प्रकट की। निराला ने दूसरा प्रसंग छेड़ा। समाज के पिछड़ेपन की बात की, ज्ञान से सुधार करने का सूत्र पेश किया। हिन्दू-मुस्लिम समस्या का हल हिन्दी के नये साहित्य में जितना सही पाया जायगा, राजनीतिक साहित्य में नहीं–निराला ने अपने व्यावहारिक वेदान्त कर गुर समझाया।

जवाहरलाल नेहरू डिब्बे में आई बला को देखते रहे, उसे टालने की कोई कारगर तरकीब सामने न थी। डिब्बे में आर.एस. पंडित भी थे। दोनों में किसी ने बहस में पड़ना उचित न समझा। लेकिन निराला सुनने नहीं, सुनाने आये थे। बनारस की गोष्ठी में जवाहरलाल के भाषण पर वह 'सुधा' में लिख चुके थे, अब वह व्यक्ति सामने था जो अपने हिन्दी-साहित्य संबंधी ज्ञान पर लज्जित न था, जो स्वयं अंग्रेजी में लिखता था, जो हिन्दी वालों को क्या करना चाहिए, उपदेश देता था। (इससे पूर्व पंडित नेहरू बनारस के एक सम्मेलन में कह आए थे कि हिन्दी साहित्य अभी दरबारी परम्परा से नहीं उबरा है। यहीं पर उन्होंने यह भी कहा था कि अच्छा होगा कि अंग्रेजी साहित्य की कुछ चुनी हुई पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करवाया जाए, इस पूरे प्रसंग पर ही निराला, पंडित जवाहरलाल नेहरू से बात कर रहे थे)।

निराला ने कहा–"पंडित जी, यह मामूली अफसोस की बात नहीं कि आप जैसे सुप्रसिद्ध व्यक्ति इस प्रान्त में होते हुए भी इस प्रान्त की मुख्य भाषा हिन्दी से प्रायः अनभिज्ञ हैं।" किसी दूसरे प्रान्त का राजनीतिक व्यक्ति ऐसा नहीं। सन् 1930 के लगभग श्री सुभाष बोस ने लाहौर के विद्यार्थियों के बीच भाषण करते हुए कहा था कि बंगाल के कवि पंजाब के वीरों के चरित्र गाते हैं। उन्हें अपनी भाषा का ज्ञान और गर्व है। महात्मा गाँधी के लिए कहा जाता है कि गुजराती को उन्होंने नया जीवन दिया है। बनारस के जिन साहित्यिकों की मण्डली म आपने दरबारी कवियों का उल्लेख किया किए उनमें से तीन को मैं जानता हूँ। तीनों अपने-अपने विषय के हिन्दी के प्रवर्तक हैं। प्रसाद जी काव्य और नाटक-साहित्य के, प्रेमचन्द जी कथा-साहित्य के और रामचन्द्र जी शुक्ल आलोचना-साहित्य के। आप ही समझिए कि इनके बीच आपका दरबारी कवियों का उल्लेख कितना हास्यास्पद हो सकता है। एक तो हिन्दी के साहित्यिक साधारण श्रेणी के लोग हैं, एक हाथ से वार झेलते, दूसरे से लिखते हुए, दूसरे आप जैसे बड़े-बड़े व्यक्तियों की मैदान में वे मुखालिफत करते देखते हैं। हमने जब काम शुरू किया था, हमारी मुखालिफत हुई थी। आज जब हम कुछ प्रतिष्ठित हुए, अपने विरोधियों से लड़ते, साहित्य की दृष्टि करते हुए, तब किन्हीं मानी में हम आपको मुखालिफत करते देखते हैं। यह कम दुर्भाग्य की बात नहीं, साहित्य और साहित्यिक के लिए। हम वार झेलते हुए सामने आए ही थे कि आपका वार हुआ। हम जानते हैं कि हिन्दी लिखने के लिए कलम हाथ में लेने पर, बिना हमारे कहे फैसला हो जायगा कि बड़े से बड़ा प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ एक जानकार साहित्यिक

के मुकाबले कितने पानी में ठहरता है। लेकिन यह तो बताइए, जहाँ सुभाष बाबू, अगर मैं भूलता नहीं, अपने सभापति के अभिभाषण में शरत्चन्द्र के निधन का जिक्र करते हैं, वहाँ क्या वजह है जो आपकी जुबान पर प्रसाद का नाम नहीं आता। मैं समझता हूँ, आपसे छोटे नेता भी सुभाष बाबू के जोड़ के शब्दों में कांग्रेस में प्रसाद जी पर शोक-प्रस्ताव पास नहीं कराते। क्या आप जानते हैं कि हिन्दी के महत्त्व की दृष्टि से प्रसाद कितने महान् हैं"।

जवाहरलाल एकटक निराला को देखते रहे। ऐसा धाराप्रवाह भाषण सुनाने वाले जीवन में ये उन्हें पहले व्यक्ति मिले थे, अगला स्टेशन अभी आया न था। सुनते जाने के सिवा चारा न था।

निराला को प्रेमचन्द याद आये। बोले–"प्रेमचन्द जी पर भी वैसा प्रस्ताव पास नहीं हुआ जैसा शरत्चन्द्र पर।"

नेहरू ने टोका–"नहीं, जहाँ तक याद है, प्रेमचन्द जी पर तो एक शोक. प्रस्ताव पास किया गया था।"

निराला ने अपनी बात स्पष्ट की–"जी हाँ, यह मैं जानता हूँ, लेकिन उसकी वैसी महत्ता नहीं जैसी शरत्चन्द वाले की है।"

आखिर अयोध्या स्टेशन आ गया। निराला ने आखिरी बात कही–"अगर मौका मिला तो आपसे मिलकर फिर साहित्यिक प्रश्न निवेदित करूँगा।"

नेहरू ने इसका कोई उत्तर न दिया।

नमस्कार करके निराला उतरे और अपने डिब्बे में आ गये। प्लेटफार्म महात्मा गाँधी की जय, पं. जवाहरलाल नेहरू की जय से गूँजता रहा। (निराला की साहित्य साधना, भाग.1, पृष्ठ क्रमांक 318 से 320)।

निराला के लिए न तो कोई व्यक्ति बड़ा था और न ही पद। उनके व्यक्ति की यह सबसे बड़ी ताकत थी कि वे किसी से डरते भी न थे। भाषा और साहित्य के लिए किसी से भी भिड़ सकते थे और भिड़े भी।

वर दे वीणा वादिनी। सरस्वती वन्दना से हमारे सांस्कृतिक कार्यक्रम शुरू होते हैं। इस वन्दना में प्रयुक्त नवगति, नवलय, तालछन्द नव नव पर नव स्वर दे 'माँगने वाले इस अमर गायक की वेदना अभी भी हिन्दी भाषी समाज और हिन्दी के पक्षधर पूरी तरह नहीं समझ सके हैं। निराला ने माँ सरस्वती से सारी नवीनता हिन्दी के लिए ही माँगी थी क्योंकि उनके लिए जीवन का एकमात्र उद्देश्य हिन्दी भाषा और उसका साहित्य था। अपने जीवन की संध्या में वे कहते हैं–'ताक रहा है भीष्म सरों की कठिन सेज से'। निःसन्देह निराला हिन्दी के

भीष्म पितामह थे। इन प्रसंगों में हिन्दी को सम्मानजनक स्थान दिलाने के लिए महाभारत अभी शेष है। इससे लड़ते रहना ही निराला के प्रति सादर कृतज्ञता होगी।

निराला की शिक्षा हाई स्कूल तक हुई। बाद में हिन्दी संस्कृत और बांग्ला का स्वतंत्र अध्ययन किया। पिता की छोटी-सी नौकरी की असुविधाओं और मान-अपमान का परिचय निराला को आरम्भ में ही प्राप्त हुआ। उन्होंने दलित-शोषित किसान के साथ हमदर्दी का संस्कार अपने अबोध मन से ही अर्जित किया। तीन वर्ष की अवस्था में माता का और बीस वर्ष का होते-होते पिता का देहांत हो गया। अपने बच्चों के अलावा संयुक्त परिवार का भी बोझ निराला पर पड़ा। पहले महायुद्ध के बाद जो महामारी फैली, उसमें न सिर्फ पत्नी मनोहरा देवी का, बल्कि चाचा, भाई और भाभी का भी देहांत हो गया। शेष कुनबे का बोझ उठाने में महिषादल की नौकरी अपर्याप्त थी। इसके बाद का उनका सारा जीवन आर्थिक-संघर्ष में बीता। निराला के जीवन की सबसे विशेष बात यह है कि कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उन्होंने सिद्धांत त्यागकर समझौते का रास्ता नहीं अपनाया, संघर्ष का साहस नहीं गंवाया। जीवन का उत्तरार्द्ध इलाहाबाद में बीता। वहीं दारागंज मुहल्ले में स्थित रायसाहब की विशाल कोठी के ठीक पीछे बने एक कमरे में 15 अक्टूबर 1961 को उन्होंने अपनी इहलीला समाप्त की।

कार्यक्षेत्र

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की पहली नियुक्ति महिषादल राज्य में ही हुई। उन्होंने 1918 से 1922 तक यह नौकरी की। उसके बाद संपादन, स्वतंत्र लेखन और अनुवाद कार्य की ओर प्रवृत्त हुए। 1922 से 1923 के दौरान कोलकाता से प्रकाशित 'समन्वय' का संपादन किया, 1923 के अगस्त से मतवाला के संपादक मंडल में कार्य किया। इसके बाद लखनऊ में गंगा पुस्तक माला कार्यालय में उनकी नियुक्ति हुई जहाँ वे संस्था की मासिक पत्रिका सुधा से 1935 के मध्य तक संबद्ध रहे। 1935 से 1940 तक का कुछ समय उन्होंने लखनऊ में भी बिताया। इसके बाद 1942 से मृत्यु पर्यन्त इलाहाबाद में रह कर स्वतंत्र लेखन और अनुवाद कार्य किया। उनकी पहली कविता जन्मभूमि प्रभा नामक मासिक पत्र में जून 1920 में, पहला कविता संग्रह 1923 में अनामिका नाम से, तथा पहला निबंध बंग भाषा का उच्चारण अक्टूबर 1920 में मासिक पत्रिका सरस्वती में प्रकाशित हुआ।

परिवार

'निराला' के पिता का नाम पं. रामसहाय था, जो बंगाल के महिषादल राज्य के मेदिनीपुर जिले में एक सरकारी नौकरी करते थे। निराला का बचपन बंगाल के इस क्षेत्र में बीता जिसका उनके मन पर बहुत गहरा प्रभाव रहा है। तीन वर्ष की अवस्था में उनकी माँ की मृत्यु हो गयी और उनके पिता ने उनकी देखरेख का भार अपने ऊपर ले लिया।

विवाह

पन्द्रह वर्ष की अल्पायु में निराला का विवाह मनोहरा देवी से हो गया। रायबरेली जिले में डलमऊ के पं. रामदयाल की पुत्री मनोहरा देवी सुन्दर और शिक्षित थीं, उनको संगीत का अभ्यास भी था। पत्नी के जोर देने पर ही उन्होंने हिन्दी सीखी। इसके बाद अतिशीघ्र ही उन्होंने बंगला के बजाय हिन्दी में कविता लिखना शुरू कर दिया। बचपन के नैराश्य और एकाकी जीवन के पश्चात् उन्होंने कुछ वर्ष अपनी पत्नी के साथ सुख से बिताये, किन्तु यह सुख ज्यादा दिनों तक नहीं टिका और उनकी पत्नी की मृत्यु उनकी 20 वर्ष की अवस्था में ही हो गयी। बाद में उनकी पुत्री जो कि विधवा थी, की भी मृत्यु हो गयी। वे आर्थिक विषमताओं से भी घिरे रहे। ऐसे समय में उन्होंने विभिन्न प्रकाशकों के साथ प्रूफ रीडर के रूप में काम किया, उन्होंने 'समन्वय' का भी सम्पादन किया।

पारिवारिक विपत्तियाँ

16-17 वर्ष की उम्र से ही इनके जीवन में विपत्तियाँ आरम्भ हो गयीं, पर अनेक प्रकार के दैवी, सामाजिक और साहित्यिक संघर्षों को झेलते हुए भी इन्होंने कभी अपने लक्ष्य को नीचा नहीं किया। इनकी माँ पहले ही गत हो चुकी थीं, पिता का भी असामायिक निधन हो गया। इनफ्लुएँजा के विकराल प्रकोप में घर के अन्य प्राणी भी चल बसे। पत्नी की मृत्यु से तो ये टूट से गये। पर कुटुम्ब के पालन-पोषण का भार स्वयं झेलते हुए वे अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए। इन विपत्तियों से त्रण पाने में इनके दार्शनिक ने अच्छी सहायता पहुँचायी।

रचनाएँ

निराला की रचनाओं में अनेक प्रकार के भाव पाए जाते हैं। यद्यपि वे खड़ी बोली के कवि थे, पर ब्रजभाषा व अवधी भाषा में भी कविताएँ गढ़ लेते थे।

उनकी रचनाओं में कहीं प्रेम की सघनता है, कहीं आध्यात्मिकता तो कहीं विपन्नों के प्रति सहानुभूति व सम्वेदना, कहीं देश-प्रेम का जज्बा तो कहीं सामाजिक रूढ़ियों का विरोध व कहीं प्रकृति के प्रति झलकता अनुराग। इलाहाबाद में पत्थर तोड़ती महिला पर लिखी उनकी कविता आज भी सामाजिक यथार्थ का एक आईना है। उनका जोर वक्तव्य पर नहीं वरन् चित्रण पर था, सड़क के किनारे पत्थर तोड़ती महिला का रेखांकन उनकी काव्य चेतना की सर्वोच्चता को दर्शाता है–

वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर
कोई न छायादार पेड़
वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्याम तन, भर बंधा यौवन
नत नयन प्रिय, कर्म-रत मन
गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार-बार प्रहार
सामने तरू-मालिका अट्टालिका प्राकार।

इसी प्रकार राह चलते भिखारी पर उन्होंने लिखा–

पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को,
भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता
दो टूक कलेजे के करता पछताता।

राम की शक्ति पूजा के माध्यम से निराला ने राम को समाज में एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया। वे लिखते हैं–

होगी जय, होगी जय
हे पुरुषोत्तम नवीन
कह महाशक्ति राम के बदन में हुईं लीन।

सौ पदों में लिखी गयी तुलसीदास निराला की सबसे बड़ी कविता है, जो कि 1934 में लिखी गयी और 1935 में सुधा के पाँच अंकों में किस्तवार

प्रकाशित हुयी। इस प्रबन्ध काव्य में निराला ने पत्नी के युवा तन-मन के आकर्षण में मोहग्रस्त तुलसीदास के महाकवि बनने को बखूबी दिखाया है–

जागा जागा संस्कार प्रबल
रे गया काम तत्क्षण वह जल
देखा वामा, वह न थी, अनल प्रमिता वह
इस ओर ज्ञान, उस ओर ज्ञान
हो गया भस्म वह प्रथम भान
छूटा जग का जो रहा ध्यान।

निराला की रचनाधर्मिता में एकरसता का पुट नहीं है। वे कभी भी बँधकर नहीं लिख पाते थे और न ही यह उनकी फक्कड़ प्रकृति के अनुकूल था। निराला की जूही की कली कविता आज भी लोगों के जेहन में बसी है। इस कविता में निराला ने अपनी अभिव्यक्ति को छंदों की सीमा से परे छन्दविहीन कविता की ओर प्रवाहित किया है–

विजन-वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी स्नेह स्वप्न मग्न
अमल कोमल तन तरुणी जूही की कली
दृग बंद किये, शिथिल पत्रंक में
वासन्ती निशा थी।

यही नहीं, निराला एक जगह स्थिर होकर कविता-पाठ भी नहीं करते थे। एक बार एक समारोह में आकाशवाणी को उनकी कविता का सीधा प्रसारण करना था, तो उनके चारों ओर माइक लगाए गए कि पता नहीं वे घूम-घूम कर किस कोने से कविता पढ़ें। निराला ने अपने समय के मशहूर रजनीसेन, चण्डीदास, गोविन्द दास, विवेकानन्द और रवीन्द्र नाथ टैगोर इत्यादि की बांग्ला कविताओं का अनुवाद भी किया, यद्यपि उन पर टैगोर की कविताओं के अनुवाद को अपना मौलिक कहकर प्रकाशित कराने के आरोप भी लगे। राजधानी दिल्ली को भी निराला ने अभिव्यक्ति दी-

यमुना की ध्वनि में
है गूँजती सुहाग-गाथा
सुनता है अन्धकार खड़ा चुपचाप जहाँ
आज वह फिरदौस, सुनसान है पड़ा
शाही दीवान आम स्तब्ध है हो रहा है

दुपहर को, पार्श्व में
उठता है झिल्ली रव
बोलते हैं स्यार रात यमुना-कछार में
लीन हो गया है रव
शाही अँगनाओं का
निस्तब्ध मीनार, मौन हैं मकबरे।

निराला की मौलिकता, प्रबल भावोद्वेग, लोकमानस के हृदय पटल पर छा जाने वाली जीवन्त व प्रभावी शैली, अद्‌भुत वाक्य विन्यास और उनमें अन्तर्निहित गूढ़ अर्थ उन्हें भीड़ से अलग खड़ा करते हैं। बसंत पंचमी और निराला का सम्बन्ध बड़ा अद्‌भुत रहा और इस दिन हर साहित्यकार उनके सान्निध्य की अपेक्षा रखता था। ऐसे ही किन्हीं क्षणों में निराला की काव्य रचना में यौवन का भावावेग दिखा-

रोक-टोक से कभी नहीं रुकती है
यौवन-मद की बाढ़ नदी की
किसे देख झुकती है
गरज-गरज वह क्या कहती है, कहने दो
अपनी इच्छा से प्रबल वेग से बहने दो।

यौवन के चरम में प्रेम के वियोगी स्वरूप को भी उन्होंने उकेरा-

छोटे से घर की लघु सीमा में
बंधे हैं क्षुद्र भाव
यह सच है प्रिय
प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही निःसीम भूमि पर।

निराला के काव्य में आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, रहस्यवाद और जीवन के गूढ़ पक्षों की झलक मिलती है पर लोकमान्यता के आधार पर निराला ने विषयवस्तु में नये प्रतिमान स्थापित किये और समसामयिकता के पुट को भी खूब उभारा। अपनी पुत्री सरोज के असामायिक निधन और साहित्यकारों के एक गुट द्वारा अनवरत अनर्गल आलोचना किये जाने से निराला अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में मनोविक्षिप्त से हो गये थे। पुत्री के निधन पर शोक-सन्तप्त निराला सरोज-स्मृति में लिखते हैं-

मुझ भाग्यहीन की तू सम्बल
युग वर्ष बाद जब हुई विकल
दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही।

लोकप्रिय रचना

सन् 1916 ई. में 'निराला' की अत्यधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय रचना 'जुही की कली' लिखी गयी। यह उनकी प्राप्त रचनाओं में पहली रचना है। यह उस कवि की रचना है, जिसने 'सरस्वती' और 'मर्यादा' की फाइलों से हिन्दी सीखी, उन पत्रिकाओं के एक-एक वाक्य को संस्कृत, बांग्ला और अंग्रेजी व्याकरण के सहारे समझने का प्रयास किया। इस समय वे महिषादल में ही थे। 'रवीन्द्र कविता कानन' के लिखने का समय यही है। सन् 1916 में इनका 'हिन्दी-बंग्ला का तुलनात्मक व्याकरण' 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ।

काव्य प्रतिभा को प्रकाश

एक सामान्य विवाद पर महिषादल की नौकरी छोड़कर वे घर वापस चले आये। कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले रामकृष्ण मिशन के पत्र 'समन्वय' में वे सन् 1922 में चले गये। 'समन्वय' के सम्पादन काल में उनके दार्शनिक विचारों के पुष्ट होने का बहुत ही अच्छा अवसर मिला। इस काल में जो दार्शनिक चेतना उनको प्राप्त हुई, उससे उनकी काव्यशक्ति और भी समृद्ध हुई। सन् 1923-24 ई. में महादेव बाबू ने उन्हें 'मतवाला' के सम्पादन मण्डल में बुला लिया। फिर तो काव्य प्रतिभा को प्रकाश में ले आने का सर्वाधिक श्रेय 'मतवाला' को ही है। 'मतवाला' में भी ये 2-3 वर्षों तक ही रह पाये। इस काल की लिखी गयी अधिकांश कविताएँ 'परिमल' में संग्रहीत हैं।

आर्थिक संकट का काल

सन् 1927-30 ई. तक वे बराबर अस्वस्थ रहे। फिर स्वेच्छा से गंगा पुस्तक माला का सम्पादन तथा 'सुधा' में सम्पादकीय का लेखन करने लगे। सन् 1930 से 42 तक उनका अधिकांश समय लखनऊ में ही बीता। यह समय उनके घोर आर्थिक संकट का काल था। इस समय जीवकोपार्जन के लिए उन्हें जनता के लिए लिखना पड़ता था। सामान्य जनरुचि कथा साहित्य के अधिक अनुकूल होती

है। उनके कहानी संग्रह 'लिली', 'चतुरी चमार', 'सुकुल की बीबी', (1941 ई.) और सखी की कहानियाँ तथा 'अप्सरा', 'अलका', 'प्रभावती', (1946 ई.) 'निरुपमा' इत्यादि उपन्यास उनके अर्थ संकट के फलस्वरूप प्रणीत हुए। वे समय-समय पर फुटबॉल लेख भी लिखते रहे। इन लेखों का संग्रह 'प्रबन्ध पद्म' के नाम से इसी समय में प्रकाशित हुआ। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे जनरुचि के कारण अपने धरातल से उतर कर सामान्य भूमि पर आ गये। उनके काव्यगत प्रयोग चलते रहे। सन् 1936 ई. में स्वरताल युक्त उनके गीतों का संग्रह 'गीतिका' नाम से प्रकाशित हुआ। दो वर्ष के बाद अर्थात् सन् 1938 ई. में उनका 'अनामिका' काव्य संग्रह प्रकाश में आया। यह संग्रह सन् 1922 ई. में प्रकाशित 'अनामिका' संग्रह से बिल्कुल भिन्न है। सन् 1938 ई. ही उनके अंतर्मुखी प्रबन्ध काव्य 'तुलसीदास' का भी प्रकाशन हुआ।

मुक्त वृत्त

हिन्दी काव्य क्षेत्र में 'निराला' का पदार्पण मुक्त वृत्त के साथ होता है। वे इस वृत्त के प्रथम पुरस्कर्ता हैं। वास्तव में 'निराला' की उद्दाम भाव धारा को छन्द के बन्धन बाँध नहीं सकते थे। गिनी-गिनाई मात्राओं और अन्त्यानुप्रासों के बँधे घाटों के बीच उनका भावोल्लास नहीं बँट सकता था। ऐसी स्थिति में काव्याभिव्यक्ति के लिए मुक्त वृत्त की अनिवार्यता स्वतः ही सिद्ध है। उन्होंने 'परिमल' की भूमिका में लिखा है-

"मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्य की मुक्ति कर्म के बन्धन में छुटकारा पाना है और कविता मुक्त छन्दों के शासन से अलग हो जाना है। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह दूसरों के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं फिर भी स्वतंत्र, इसी तरह कविता का भी हाल है।"

'मेरे गीत और कला' शीर्षक निबन्ध में उन्होंने लिखा है-

"भावों की मुक्ति छन्दों की मुक्ति चाहती है। यहाँ भाषा, भाव और छन्द तीनों स्वछन्द हैं।"

रीतिकाल की कृत्रिम छन्दोबद्ध रचना के विरुद्ध यह नवीन उन्मेषशील काव्य की पहली विद्रोह वाणी है। भाव-व्यंजना की दृष्टि से मुक्तछन्द कोमल और परुष दोनों प्रकार की भावाभिव्यक्ति के लिए समान रूप से समर्थ हैं, यद्यपि 'निराला' का कहना है कि, "यह कविता स्त्री की सुकुमारता नहीं, कवित्त्व का

पुरुष गर्व है", किन्तु 'जूही की कली' जैसी उत्कृष्ट कोटि कीशृंगारिक रचना इसी वृत्त में लिखी गयी है।

'निराला' द्वारा प्रस्तुत मुक्त छन्द का आधार कवित्त छन्द है। इसमें कवि को भावानुकूल चरणों के प्रसार की खुली छूट है। भाव की पूर्णता के साथ वृत्त भी समाप्त हो जाता है। आज तो मुक्त वृत्त काव्य-रचना का मुख्य छन्द हो गया है, पर अपनी विशिष्ट नादयोजना के कारण 'निराला' ने उसमें प्रभावपूर्ण संगीतात्मकता ला दी है। 'शेफलिका का पत्र' आदि रचनाएँ इसी छन्द में लिखी गयी हैं। 'पंचवटी प्रसंग'-गीति नाट्य के लिए इससे अधिक उपयुक्त और कोई छन्द नहीं हो सकता था। ये समस्त रचनाएँ 'परिमल' के तृतीय खण्ड में संग्रहीत हैं।

'परिमल' के द्वितीय खण्ड की रचनाएँ स्वच्छन्द छन्द में लिखी गयी हैं, जिसे 'निराला' मुक्तिगीत कहते हैं। इन गीतों में तुक का आग्रह तो है पर मात्राओं का नहीं। पन्त के 'आँसू', 'उच्छ्वास' और 'परिवर्तन' भी इसी छन्द में लिखे गये हैं। 'परिमल' के प्रथम खण्ड में सममात्रिक तुकान्त कविताएँ हैं। मुक्त वृत्तात्मक कविताएँ आख्यान प्रधान हैं तो मुक्तगीत चित्रण प्रधान और मात्रिक छन्द में लिखी गयी कविताओं में भाव और कल्पना की प्रधानता देखी जा सकती है। उनकी बहु-वस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा का परिचय आरम्भ से ही मिलने लगता है-विशेष रूप से सड़ी-गली मान्यताओं के प्रति तीव्र विद्रोह तथा निम्नवर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति उनमें प्रारम्भ से ही दिखाई देती है।

छायावादी कवियों ने मुख्यत: प्रगीतों की रचना की है। ये प्रगीत गेय तो होते हैं पर ये शास्त्रानुमोदित ढंग पर नहीं गाये जा सकते हैं। नाद-योजना की ओर अधिक झुकाव होने के कारण 'निराला' ने नये स्वर-ताल से युक्त गीतों की सृष्टि की। अंग्रेजी स्वर-मैत्री का प्रभाव बंगला के गीतों पर पड़ चुका था, उसके रंग-ढंग पर बंगला गीतों की स्वर लिपियाँ भी तैयार की गयीं। हिन्दी के कवियों में 'निराला' इस दिशा में भी अग्रसर हुए। उन्हें हिन्दी संगीत की शब्दावली और गाने के ढंग दोनों खटकते थे। इसके फलस्वरूप 'गीतिका' की रचना हुई।

गीत

निराला के गीत गायकों के गीतों की भाँति राग-रागनियों की रूढ़ियों से बँधे हुए नहीं हैं। उच्चारण का नया आधार लिये हुए सभी गीत एक अलग भूमि पर प्रतिष्ठित हैं। इनके स्वर, ताल और लय अंग्रेजी गीतों से प्रभावित हैं। पियानों

पर गाये जाने वाले धार्मिक गीतों की झलक इन गीतों में मिलती है। इसलिए इन गीतों की गायन-पद्धति और भावविन्यास में पवित्रता का स्पष्ट संकेत मिलता है। यद्यपि 'गीतिका' की मूल भावनाशृंगारिक है, फिर भी बहुत से गीतों में माधुर्य भाव से आत्मनिवेदन किया गया है। जगह-जगह मनोरम प्रकृति-वर्णन तथा उत्कृष्ट देश-प्रेम का चित्रण भी मिलता है। इस संग्रह की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि इसमें संगीतात्मकता के नाम पर काव्य पक्ष को कहीं पर भी विकृत नहीं होने दिया गया है।

प्रौढ़काल

1935 ई. से 1938 ई. तक 'निराला' की काव्य रचना को प्रौढ़काल कहा जा सकता है। इस बीच लिखी हुई कविताएँ 'अनामिका' में संग्रहीत हैं। 'अनामिका' का प्रकाशन 1938 ई. में हुआ। 'अनामिका' में संग्रहीत अधिकांश रचनाएँ 'निराला' की उत्कृष्ट भाव-व्यंजना तथा कलात्मक प्रौढ़ता की द्योतक हैं। 'प्रेयसी', 'रेखा', 'सरोजस्मृति', 'राम की शक्तिपूजा' आदि उनकी श्रेष्ठतम रचनाएँ हैं। 'सरोजस्मृति' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ शोक-गीत है तो 'राम की शक्तिपूजा' आदि उनकी श्रेष्ठतम रचनाएँ हैं। 'सरोजस्मृति' में करुणा की पृष्ठभूमि परशृंगार, हास्य, व्यंग्य इत्यादि अनेक भावों का काव्यात्मक संगुम्फन किया गया है। नाटकीय गुणों से ओत-प्रोत होने के कारण वह और भी प्रभावपूर्ण हो उठी है। काव्य में कर्ता के जिस निर्लेप व्यक्तित्व का महत्त्व **टी.एस. इलियट** ने स्थापित किया है, वह इस कविता में चरम ऊँचाई पर पहुँचा हुआ है। 'राम की शक्तिपूजा' में कवि का पौरुष और ओज चरमोत्कर्ष के साथ अभिव्यक्त हुआ है। महाकाव्य में भावगत औदात्य के अनुकूल कलागत औदात्य आवश्यक है। इस कविता में दोनों प्रकार की उदात्तताओं का नीर-क्षीर सम्मिश्रण हुआ है।

प्रथम प्रेरणा केन्द्र

'तुलसीदास' में कथा की अपेक्षा चिन्तन का विस्तार अधिक है। इस प्रबन्ध में तुलसी के मानस पक्ष का उद्‌घाटन करते हुए तत्कालीन परिवेश का पूरा सहारा लिया गया है। चित्रकूट कानन की छवि की चिन्ताधारा का प्रथम प्रेरणा केन्द्र है। प्रकृति का जो चित्र कवि के सम्मुख प्रस्तुत हुआ है, उसके दो पक्ष हैं-प्रकृति का स्वयं का पक्ष और तत्कालीन समाज का निरूपण। कवि ने इन दोनों पक्षों का निर्वाह बहुत कुशलतापूर्वक किया है। भारत के सांस्कृतिक ह्रास

के पुनरुद्धार की प्रेरणा तुलसी को प्रकृति के माध्यम से ही मिलती है। इसे देखकर उनकी अन्तर्वृत्तियाँ मन्थित हो उठी हैं। इन्हीं अन्तर्वृत्तियों का निरूपण पुस्तक की मूल चिन्ताधारा है। इस प्रबन्ध में भी उनके शिल्पी का रूप सहज ही भासित हो जाता है। छन्दों की बंदिश, रूपकों की विशद योजना, नवीन शब्द-विन्यास आदि उनके अपने हैं। पर इस ग्रन्थ में ऐसे शब्दों का व्यवहार भी हुआ है, जो अर्थ की दृष्टि से इसे दुरूह बना देते हैं। फिर भी जो लोग काव्य में बुद्धि-तत्त्व की अहमियत स्वीकार करेंगे, वे इसे निर्विवाद रूप से एक श्रेष्ठ रचना मानेंगे।

पूर्ण कविताएँ

प्रौढ़ कृतियों की सर्जना के साथ ही 'निराला' व्यंग्यविनोद पूर्ण कविताएँ भी लिखते रहे हैं। जिनमें से कुछ 'अनामिका' में संग्रहीत हैं। पर इसके बाद बाह्य परिस्थितियों के कारण, जिनमें उनके प्रति परम्परावादियों का उग्र विरोध भी सम्मिलित है, उनमें विशेष परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा। 'निराला' और पन्त मूलत: अनुभूतिवादी कवि हैं। ऐसे व्यक्तियों को व्यक्तिगत और सामाजिक परिस्थितियाँ बहुत प्रभावित करती हैं। इसके फलस्वरूप उनकी कविताओं में व्यंग्योक्तियों के साथ-साथ निषेधात्मक जीवन की गहरी अभिव्यक्ति होने लगी। 'कुकुरमुत्ता' तक पहुँचते-पहुँचते वह प्रगतिवाद के विरोध में तर्क उपस्थित करने लगता है। उपालम्भ और व्यंग्य के समाप्त होते-होते कवि में विषादात्मक शान्ति आ जाती है। अब उनके कथन में दुनिया के लिए सन्देश भगवान् के प्रति आत्मनिवेदन है और है साहित्यिक-राजनीतिक महापुरुषों के प्रशस्ति अंकन का प्रयास। 'अणिमा' जीवन के इन्हीं पक्षों की द्योतक है, पर इसकी कुछ अनुभूतियों की तीव्रता मन को भीतर से कुरेद देती है। 'बेला' और 'नये पत्ते' में कवि की मुख्य दृष्टि उर्दू और फारसी के बन्दों (छन्दों) को हिन्दी में डालने की ओर रही है। इसके बाद के उनके दो गीत-संग्रहों-'अर्चना' और 'गीतगुंज' में कहीं पर गहरी आत्मानुभूति की झलक है तो कहीं व्यंग्योक्ति की। उनके व्यंग्य की बानगी देखने के लिए उनकी दो गद्य की रचनाओं 'कुल्लीभाँट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' को भुलाया नहीं जा सकता।

द्रष्टा कवि

सब मिलाकर 'निराला' भारतीय संस्कृति के द्रष्टा कवि हैं-वे गलित रूढ़ियों के विरोधी तथा संस्कृति के युगानुरूप पक्षों के उद्घाटक और पोषक रहे

हैं पर काव्य तथा जीवन में निरन्तर रूढ़ियों का मूलोच्छेद करते हुए इन्हें अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ा। मध्यम श्रेणी में उत्पन्न होकर परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से मोर्चा लेता हुआ आदर्श के लिए सब कुछ उत्सर्ग करने वाला महापुरुष जिस मानसिक स्थिति को पहुँचा, उसे बहुत से लोग व्यक्तित्व की अपूर्णता कहते हैं। पर जहाँ व्यक्ति के आदर्शों और सामाजिक हीनताओं में निरन्तर संघर्ष हो, वहाँ व्यक्ति का ऐसी स्थिति में पड़ना स्वाभाविक ही है। हिन्दी की ओर से 'निराला' को यह बलि देनी पड़ी। जागृत और उन्नतिशील साहित्य में ही ऐसी बलियाँ सम्भव हुआ करती हैं-प्रतिगामी और उद्देश्यहीन साहित्य में नहीं।

लेखनकार्य

निराला ने 1920 ई. के आसपास से लेखन कार्य आरंभ किया। उनकी पहली रचना 'जन्मभूमि' पर लिखा गया एक गीत था। लंबे समय तक निराला की प्रथम रचना के रूप में प्रसिद्ध 'जूही की कली' शीर्षक कविता, जिसका रचनाकाल निराला ने स्वयं 1916 ई. बतलाया था, वस्तुतः 1921 ई. के आसपास लिखी गयी थी तथा 1922 ई. में पहली बार प्रकाशित हुई थी। कविता के अतिरिक्त कथासाहित्य तथा गद्य की अन्य विधाओं में भी निराला ने प्रभूत मात्र में लिखा है।

प्रकाशित कृतियाँ

काव्यसंग्रह

- अनामिका (1923),
- परिमल (1930),
- गीतिका (1936)।

अनामिका (द्वितीय) (1939) (इसी संग्रह में सरोज स्मृति और राम की शक्तिपूजा जैसी प्रसिद्ध कविताओं का संकलन है।

- तुलसीदास (1939),
- कुकुरमुत्ता (1942),
- अणिमा (1943),
- बेला (1946),
- नये पत्ते (1946),
- अर्चना(1950),

- आराधना 91953),
- गीत कुंज (1954),
- सांध्य काकली,
- अपरा (संचयन)।

उपन्यास

- अप्सरा (1931),
- अलका (1933),
- प्रभावती (1936),
- निरुपमा (1936),
- कुल्ली भाट (1938-39),
- बिल्लेसुर बकरिहा (1942),
- चोटी की पकड़ (1946),
- काले कारनामे (1950), अपूर्ण,
- चमेली (अपूर्ण),
- इन्दुलेखा (अपूर्ण)।

कहानी संग्रह

- लिली (1934),
- सखी (1935),
- सुकुल की बीवी (1941),
- चतुरी चमार (1945)–'सखी' संग्रह की कहानियों का ही इस नये नाम से पुनर्प्रकाशन।,
- देवी (1948)–यह संग्रह वस्तुतः पूर्व प्रकाशित संग्रहों से संचयन है। इसमें एकमात्र नयी कहानी 'जान की!' संकलित है।,

निबन्ध-आलोचना

- रवीन्द्र कविता कानन (1929),
- प्रबंध पद्म (1934),
- प्रबंध प्रतिमा (1940),
- चाबुक (1942),

- चयन (1957),
- संग्रह (1963)।
- पुराण कथा,
- महाभारत (1939),
- रामायण की अन्तर्कथाएँ (1956)।

बालोपयोगी साहित्य

- भक्त ध्रुव (1926),
- भक्त प्रहलाद (1926),
- भीष्म (1926),
- महाराणा प्रताप (1927),
- सीखभरी कहानियाँ (ईसप की नीतिकथाएँ), 1969,

अनुवाद

- रामचरितमानस (विनय-भाग)-1948 (खड़ीबोली हिन्दी में पद्यानुवाद)
- आनंद मठ (बांग्ला से गद्यानुवाद),
- विष वृक्ष,
- कृष्णकांत का वसीयतनामा,
- कपालकुंडला,
- दुर्गेश नन्दिनी,
- राज सिंह,
- राजरानी,
- देवी चौधरानी,
- युगलांगुलीय,
- चन्द्रशेखर,
- रजनी,
- श्रीरामकृष्णवचनामृत (तीन खण्डों में),
- परिव्राजक,
- भारत में विवेकानंद,
- राजयोग (अंशानुवाद)।

रचनावली

निराला रचनावली नाम से 8 खण्डों में पूर्व प्रकाशित एवं अप्रकाशित सम्पूर्ण रचनाओं का सुनियोजित प्रकाशन (प्रथम संस्करण-1983)।

निधन

15 अक्टूबर, 1961 को अपनी यादें छोड़कर निराला इस लोक को अलविदा कह गये पर मिथक और यथार्थ के बीच अन्तर्विरोधों के बावजूद अपनी रचनात्मकता को यथार्थ की भावभूमि पर टिकाये रखने वाले निराला आज भी हमारे बीच जीवन्त हैं। इनकी मृत्यु प्रयाग में हुई थी। मुक्ति की उत्कट आकांक्षा उनको सदैव बेचैन करती रही, तभी तो उन्होंने लिखा–

- तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा
- पत्थर की, निकलो फिर गंगा-जलधारा
- गृह-गृह की पार्वती
- पुनः सत्य-सुन्दर-शिव को सँवारती
- उर-उर की बनो आरती
- भ्रान्तों की निश्चल ध्रुवतारा
- तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा।

अपने समकालीन अन्य कवियों से अलग उन्होंने कविता में कल्पना का सहारा बहुत कम लिया है और यथार्थ को प्रमुखता से चित्रित किया है। वे हिन्दी में मुक्तछंद के प्रवर्तक भी माने जाते हैं। 1930 में प्रकाशित अपने काव्य संग्रह परिमल की भूमिका में वे लिखते हैं।

मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्म के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना है। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह दूसरों के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं फिर भी स्वतंत्र। इसी तरह कविता का भी हाल है।

4

भारतेन्दु हरिश्चंद्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह कहे जाते हैं। वे हिन्दी में आधुनिकता के पहले रचनाकार थे। इनका मूल नाम 'हरिश्चन्द्र' था, 'भारतेन्दु' उनकी उपाधि थी। उनका कार्यकाल युग की सन्धि पर खड़ा है। उन्होंने रीतिकाल की विकृत सामन्ती संस्कृति की पोषक वृत्तियों को छोड़कर स्वस्थ परम्परा की भूमि अपनाई और नवीनता के बीज बोए। हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है। भारतीय नवजागरण के अग्रदूत के रूप में प्रसिद्ध भारतेन्दु जी ने देश की गरीबी, पराधीनता, शासकों के अमानवीय शोषण का चित्रण को ही अपने साहित्य का लक्ष्य बनाया। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में उन्होंने अपनी प्रतिभा का उपयोग किया।

भारतेन्दु बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। हिंदी पत्रकारिता, नाटक और काव्य के क्षेत्र में उनका बहुमूल्य योगदान रहा। हिंदी में नाटकों का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चंद्र से माना जाता है। भारतेन्दु के नाटक लिखने की शुरुआत बंगला के विद्यासुन्दर (1867) नाटक के अनुवाद से होती है। यद्यपि नाटक उनके पहले भी लिखे जाते रहे, किन्तु नियमित रूप से खड़ीबोली में अनेक नाटक लिखकर भारतेन्दु ने ही हिंदी नाटक की नींव को सुदृढ़ बनाया। उन्होंने 'हरिश्चंद्र चन्द्रिका', 'कविवचनसुधा' और 'बाला बोधिनी' पत्रिकाओं का संपादन भी किया। वे एक उत्कृष्ट कवि, सशक्त व्यंग्यकार, सफल नाटककार, जागरूक पत्रकार तथा

ओजस्वी गद्यकार थे। इसके अलावा वे लेखक, कवि, संपादक, निबंधकार, एवं कुशल वक्ता भी थे। भारतेन्दु जी ने मात्र चौंतीस वर्ष की अल्पायु में ही विशाल साहित्य की रचना की। उन्होंने मात्रा और गुणवत्ता की दृष्टि से इतना लिखा और इतनी दिशाओं में काम किया कि उनका समूचा रचनाकर्म पथदर्शक बन गया।

जीवन परिचय

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म 9 सितम्बर, 1850 को काशी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ। उनके पिता गोपालचंद्र एक अच्छे कवि थे और 'गिरधरदास' उपनाम से कविता लिखा करते थे। 1857 में प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय उनकी आयु 7 वर्ष की होगी। ये दिन उनकी आँख खुलने के थे। भारतेन्दु का कृतित्व साक्ष्य है कि उनकी आँखें एक बार खुलीं तो बन्द नहीं हुईं। उनके पूर्वज अंग्रेज-भक्त थे, उनकी ही कृपा से धनवान हुये थे। हरिश्चंद्र पाँच वर्ष के थे तो माता की मृत्यु और दस वर्ष के थे तो पिता की मृत्यु हो गयी। इस प्रकार बचपन में ही माता-पिता के सुख से वंचित हो गये। विमाता ने खूब सताया। बचपन का सुख नहीं मिला। शिक्षा की व्यवस्था प्रथापालन के लिए होती रही। संवेदनशील व्यक्ति के नाते उनमें स्वतन्त्र रूप से देखने-सोचने-समझने की आदत का विकास होने लगा। पढ़ाई की विषय-वस्तु और पद्धति से उनका मन उखड़ता रहा। क्वींस कॉलेज, बनारस में प्रवेश लिया, तीन-चार वर्षों तक कॉलेज आते-जाते रहे पर यहाँ से मन बार-बार भागता रहा। स्मरण शक्ति तीव्र थी, ग्रहण क्षमता अद्‌भुत। इसलिए परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते रहे। बनारस में उन दिनों अंग्रेजी पढ़े-लिखे और प्रसिद्ध लेखक-राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' थे, भारतेन्दु शिष्य भाव से उनके यहाँ जाते। उन्हीं से अंग्रेजी सीखी। भारतेन्दु ने स्वाध्याय से संस्कृत, मराठी, बंगला, गुजराती, पंजाबी, उर्दू भाषाएँ सीख लीं।

उनको काव्य-प्रतिभा अपने पिता से विरासत के रूप में मिली थी। उन्होंने पांच वर्ष की अवस्था में ही निम्नलिखित दोहा बनाकर अपने पिता को सुनाया और सुकवि होने का आशीर्वाद प्राप्त किया-

लै ब्योढ़ा ठाढ़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान।
बाणासुर की सेन को हनन लगे भगवान।।

धन के अत्यधिक व्यय से भारतेंदु जी ऋणी बन गए और दुश्चिंताओं के कारण उनका शरीर शिथिल होता गया। परिणाम स्वरूप 1885 में अल्पायु में ही मृत्यु ने उन्हें ग्रस लिया।

साहित्यिक परिचय

भारतेन्दु के वृहत साहित्यिक योगदान के कारण ही 1857 से 1900 तक के काल को भारतेन्दु युग के नाम से जाना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार,

भारतेन्दु अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो पद्माकर, द्विजदेव की परम्परा में दिखाई पड़ते थे, तो दूसरी ओर बंग देश के माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में। प्राचीन और नवीन का सुन्दर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है।

पंद्रह वर्ष की अवस्था से ही भारतेन्दु ने साहित्य सेवा प्रारम्भ कर दी थी। अठारह वर्ष की अवस्था में उन्होंने 'कविवचनसुधा' नामक पत्रिका निकाली, जिसमें उस समय के बड़े-बड़े विद्वानों की रचनाएं छपती थीं। वे बीस वर्ष की अवस्था में ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट बनाए गए और आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने 1868 में 'कविवचनसुधा', 1873 में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और 1874 में स्त्री शिक्षा के लिए 'बाला बोधिनी' नामक पत्रिकाएँ निकालीं। साथ ही उनके समांतर साहित्यिक संस्थाएँ भी खड़ी कीं। वैष्णव भक्ति के प्रचार के लिए उन्होंने 'तदीय समाज' की स्थापना की थी। राजभक्ति प्रकट करते हुए भी, अपनी देशभक्ति की भावना के कारण उन्हें अंग्रेजी हुकूमत का कोपभाजन बनना पड़ा। उनकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर काशी के विद्वानों ने 1880 में उन्हें 'भारतेंदु' (भारत का चंद्रमा) की उपाधि प्रदान की। हिन्दी साहित्य को भारतेन्दु की देन भाषा तथा साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में है। भाषा के क्षेत्र में उन्होंने खड़ी बोली के उस रूप को प्रतिष्ठित किया जो उर्दू से भिन्न है और हिन्दी क्षेत्र की बोलियों का रस लेकर संवर्धित हुआ है। इसी भाषा में उन्होंने अपने सम्पूर्ण गद्य साहित्य की रचना की। साहित्य सेवा के साथ-साथ भारतेंदु जी की समाज-सेवा भी चलती रही। उन्होंने कई संस्थाओं की स्थापना में अपना योग दिया। दीन-दुखियों, साहित्यिकों तथा मित्रों की सहायता करना वे अपना कर्तव्य समझते थे।

प्रमुख कृतियाँ

मौलिक नाटक

- वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1873ई., प्रहसन),
- सत्य हरिश्चन्द्र (1875, नाटक),

- श्री चंद्रावली (1876, नाटिका),
- विषस्य विषमौषधम् (1876, भाण),
- भारत दुर्दशा (1880, ब्रजरत्नदास के अनुसार 1876, नाट्य रासक),
- नीलदेवी (1881, ऐतिहासिक गीति रूपक),
- अंधेर नगरी (1881, प्रहसन),
- प्रेमजोगिनी (1875, प्रथम अंक में चार गर्भांक, नाटिका),
- सती प्रताप (1883, अपूर्ण, केवल चार दृश्य, गीतिरूपक, बाबू राधाकृष्णदास ने पूर्ण किया)।

अनूदित नाट्य रचनाएँ

- विद्यासुन्दर (1868, नाटक, संस्कृत 'चौरपंचाशिका' के यतीन्द्रमोहन ठाकुर कृत बांग्ला संस्करण का हिंदी अनुवाद),
- पाखण्ड विडम्बन (कृष्ण मिश्र कृत 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक के तृतीय अंक का अनुवाद),
- धनंजय विजय (1873, व्यायोग, कांचन कवि कृत संस्कृत नाटक का अनुवाद),
- कर्पूर मंजरी (1875, सट्टक, राजशेखर कवि कृत प्राकृत नाटक का अनुवाद),
- भारत जननी (1877, नाट्यगीत, बंगला की 'भारतमाता' के हिंदी अनुवाद पर आधारित),
- मुद्राराक्षस (1878, विशाखदत्त के संस्कृत नाटक का अनुवाद),
- दुर्लभ बंधु (1880, शेक्सपियर के 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का अनुवाद)।

निबंध संग्रह

- नाटक,
- कालचक्र (जर्नल),
- लेवी प्राण लेवी,
- भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है,
- कश्मीर कुसुम,
- जातीय संगीत,
- संगीत सार,

- हिंदी भाषा,
- स्वर्ग में विचार सभा।

काव्यकृतियां

- भक्तसर्वस्व (1870),
- प्रेममालिका (1871),
- प्रेम माधुरी (1875),
- प्रेम-तरंग (1877),
- उत्तरार्द्ध भक्तमाल (1876-77),
- प्रेम-प्रलाप (1877),
- होली (1879),
- मधु मुकुल (1881),
- राग-संग्रह (1880),
- वर्षा-विनोद (1880),
- विनय प्रेम पचासा (1881),
- फूलों का गुच्छा-खड़ीबोली काव्य (1882)
- प्रेम फुलवारी (1883),
- कृष्णचरित्र (1883),
- दानलीला,
- तन्मय लीला,
- नये जमाने की मुकरी,
- सुमनांजलि,
- बन्दर सभा (हास्य व्यंग),
- बकरी विलाप (हास्य व्यंग)।

कहानी

- अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न,
- यात्र वृत्तान्त,
- सरयूपार की यात्रा,
- लखनऊ।

आत्मकथा

- एक कहानी–कुछ आपबीती, कुछ जगबीती,
- उपन्यास,
- पूर्णप्रकाश,
- चन्द्रप्रभा।

वर्ण्य विषय

भारतेंदु जी की यह विशेषता रही कि जहां उन्होंने ईश्वर भक्ति आदि प्राचीन विषयों पर कविता लिखी वहां उन्होंने समाज सुधार, राष्ट्र प्रेम आदि नवीन विषयों को भी अपनाया। भारतेंदु की रचनाओं में अंग्रेजी शासन का विरोध, स्वतंत्रता के लिए उद्दाम आकांक्षा और जातीय भावबोध की झलक मिलती है। सामन्ती जकड़न में फंसे समाज में आधुनिक चेतना के प्रसार के लिए लोगों को संगठित करने का प्रयास करना उस जमाने में एक नई ही बात थी। उनके साहित्य और नवीन विचारों ने उस समय के तमाम साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों को झकझोरा और उनके इर्द–गिर्द राष्ट्रीय भावनाओं से ओत–प्रोत लेखकों का एक ऐसा समूह बन गया जिसे भारतेन्दु मंडल के नाम से जाना जाता है।

विषय के अनुसार उनकी कविताश्रृंगार–प्रधान, भक्ति–प्रधान, सामाजिक समस्या प्रधान तथा राष्ट्र प्रेम प्रधान है।

श्रृंगार रस प्रधान भारतेंदु जी नेश्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का सुंदर चित्रण किया है। वियोगावस्था का एक चित्र देखिए–

देख्यो एक बारहूं न नैन भरि तोहि याते
जौन जौन लोक जैहें तही पछतायगी।
बिना प्रान प्यारे भए दरसे तिहारे हाय,
देखि लीजो आंखें ये खुली ही रह जायगी।

भक्ति प्रधान भारतेंदु जी कृष्ण के भक्त थे और पुष्टि मार्ग के मानने वाले थे। उनको कविता में सच्ची भक्ति भावना के दर्शन होते हैं। वे कामना करते हैं–

बोल्यों करै नूपुर स्त्रीननि के निकट सदा
पद तल मांहि मन मेरी बिहरयौ करै।
बाज्यौ करै बंसी धुनि पूरि रोम–रोम,
मुख मन मुस्कानि मंद मनही हास्यौ करै।

सामाजिक समस्या प्रधान भारतेंदु जी ने अपने काव्य में अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों पर तीखे व्यंग्य किए। महाजनों और रिश्वत लेने वालों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा-

चूरन अमले जो सब खाते,
दूनी रिश्वत तुरत पचाते।
चूरन सभी महाजन खाते,
जिससे जमा हजम कर जाते।

राष्ट्र-प्रेम प्रधान भारतेंदु जी के काव्य में राष्ट्र-प्रेम भी भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। भारत के प्राचीन गौरव की झांकी वे इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं-

भारत के भुज बल जग रच्छित,
भारत विद्या लहि जग सिच्छित।
भारत तेज जगत विस्तारा,
भारत भय कंपिथ संसारा।

प्राकृतिक चित्रण प्रकृति चित्रण में भारतेंदु जी को अधिक सफलता नहीं मिली, क्योंकि वे मानव-प्रकृति के शिल्पी थे, बाह्य प्रकृति में उनका मर्म पूर्ण रूपेण नहीं रम पाया। अत: उनके अधिकांश प्रकृति चित्रण में मानव हृदय को आकर्षित करने की शक्ति का अभाव है। चंद्रावली नाटिका के यमुना-वर्णन में अवश्य सजीवता है तथा उसकी उपमाएं और उत्प्रेक्षाएं नवीनता लिए हुए हैं-

कै पिय पद उपमान जान यह निज उर धारत,
कै मुख कर बहु भृंगन मिस अस्तुति उच्चारत।
कै ब्रज तियगन बदन कमल की झलकत झांईं,
कै ब्रज हरिपद परस हेतु कमला बहु आईं

प्रकृति वर्णन का यह उदहारण देखिये, जिसमें युमना की शोभा कितनी दर्शनीय है-

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहूँ सुहाये।।

भाषा

भारतेन्दु के समय में राजकाज और संभ्रांत वर्ग की भाषा फारसी थी। वहीं, अंग्रेजी का वर्चस्व भी बढ़ता जा रहा था। साहित्य में ब्रजभाषा का बोलबाला था।

फारसी के प्रभाव वाली उर्दू भी चलन में आ गई थी। ऐसे समय में भारतेन्दु ने लोकभाषाओं और फारसी से मुक्त उर्दू के आधार पर खड़ी बोली का विकास किया। आज जो हिंदी हम लिखते-बोलते हैं, वह भारतेंदु की ही देन है। यही कारण है कि उन्हें आधुनिक हिंदी का जनक माना जाता है। केवल भाषा ही नहीं, साहित्य में उन्होंने नवीन आधुनिक चेतना का समावेश किया और साहित्य को 'जन' से जोड़ा।

भारतेन्दु की रचनाधर्मिता में दोहरापन दिखता है। कविता जहां वे ब्रज भाषा में लिखते रहे, वहीं उन्होंने बाकी विधाओं में सफल हाथ खड़ी बोली में आजमाया। सही मायने में कहें तो भारतेंदु आधुनिक खड़ी बोली गद्य के उन्नायक हैं।

भारतेन्दु जी के काव्य की भाषा प्रधानत: ब्रज भाषा है। उन्होंने ब्रज भाषा के अप्रचलित शब्दों को छोड़ कर उसके परिकृष्ट रूप को अपनाया। उनकी भाषा में जहां-तहां उर्दू और अंग्रेजी के प्रचलित शब्द भी जाते हैं।

उनके गद्य की भाषा सरल और व्यावहारिक है। मुहावरों का प्रयोग कुशलतापूर्वक हुआ है।

शैली

भारतेंदु जी के काव्य में निम्नलिखित शैलियों के दर्शन होते हैं–

1. रीति कालीन रसपूर्ण अलंकार शैली-शृंगारिक कविताओं में,
2. भावात्मक शैली-भक्ति के पदों में,
3. व्यंग्यात्मक शैली-समाज-सुधार की रचनाओं में,
4. उद्‌बोधन शैली-देश-प्रेम की कविताओं में।

रस

भारतेंदु जी ने लगभग सभी रसों में कविता की है।शृंगार और शान्त रसों की प्रधानता है।शृंगार के दोनों पक्षों का भारतेंदु जी ने सुंदर वर्णन किया है। उनके काव्य में हास्य रस की भी उत्कृष्ट योजना मिलती है।

छन्द

भारतेंदु जी ने अपने समय में प्रचलित प्राय: सभी छंदों को अपनाया है। उन्होंने केवल हिंदी के ही नहीं उर्दू, संस्कृत, बंगला भाषा के छंदों को भी स्थान

दिया है। उनके काव्य में संस्कृत के वसंत तिलका, शार्दूल विक्रीड़ित, शालिनी आदि हिंदी के चौपाई, छप्पय, रोला, सोरठा, कुंडलियाँ, कवित्त, सवैया, घनाक्षरी आदि, बंगला के पयार तथा उर्दू के रेखता, गजल छंदों का प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त भारतेंदु जी कजली, ठुमरी, लावनी, मल्हार, चैती आदि लोक छंदों को भी व्यवहार में लाए हैं।

अलंकार

अलंकारों का प्रयोग भारतेंदु जी के काव्य में सहज रूप से हुआ है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और संदेह अलंकारों के प्रति भारतेंदु जी की अधिक रुचि है। शब्दालंकारों को भी स्थान मिला है। निम्न पंक्तियों में उत्प्रेक्षा और अनुप्रास अलंकार की योजना स्पष्ट दिखाई देती है–

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहु सुहाए

महत्त्वपूर्ण कार्य

नवीन साहित्यिक चेतना और स्वभाषा प्रेम का सूत्रपात

आधुनिक हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु जी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे बहूमुखी प्रतिभा के स्वामी थे। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध आदि सभी क्षेत्रों में उनकी देन अपूर्व है। वे हिंदी में नव जागरण का संदेश लेकर अवतरित हुए। उन्होंने हिंदी के सर्वांगीण विकास में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। भाव, भाषा और शैली में नवीनता तथा मौलिकता का समावेश करके उन्हें आधुनिक काल के अनुरूप बनाया। आधुनिक हिंदी के वे जन्मदाता माने जाते हैं। हिंदी के नाटकों का सूत्रपात भी उन्हीं के द्वारा हुआ।

भारतेन्दु अपने समय के साहित्यिक नेता थे। उनसे कितने ही प्रतिभाशाली लेखकों को जन्म मिला। मातृ-भाषा की सेवा में उन्होंने अपना जीवन ही नहीं सम्पूर्ण धन भी अर्पित कर दिया। हिंदी भाषा की उन्नति उनका मूलमंत्र था–

निज भाषा उन्नति लहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को शूल।।
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहू, भाषा माहि प्रचार।।

1882 में शिक्षा आयोग (हन्टर कमीशन) के समक्ष अपनी गवाही में हिन्दी को न्यायालयों की भाषा बनाने की महत्ता पर उन्होंने कहा-

"यदि हिन्दी अदालती भाषा हो जाए, तो सम्मन पढ़वाने, के लिए दो-चार आने कौन देगा, और साधारण-सी अर्जी लिखवाने के लिए कोई रुपया-आठ आने क्यों देगा। तब पढ़ने वालों को यह अवसर कहाँ मिलेगा कि गवाही के सम्मन को गिरफ्तारी का वारंट बता दें। सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग किया जाता है। यही (भारत) ऐसा देश है जहाँ अदालती भाषा न तो शासकों की मातृभाषा है और न प्रजा की। यदि आप दो सार्वजनिक नोटिस, एक उर्दू में, तथा एक हिंदी में, लिखकर भेज दें तो आपको आसानी से मालूम हो जाएगा कि प्रत्येक नोटिस को समझने वाले लोगों का अनुपात क्या है। जो सम्मन जिलाधीशों द्वारा जारी किये जाते हैं उनमें हिंदी का प्रयोग होने से रैयत और जमींदार को हार्दिक प्रसन्नता प्राप्त हुई है। साहूकार और व्यापारी अपना हिसाब-किताब हिंदी में रखते हैं। स्त्रियाँ हिंदी लिपि का प्रयोग करती हैं। पटवारी के कागजात हिंदी में लिखे जाते हैं और ग्रामों के अधिकतर स्कूल हिंदी में शिक्षा देते हैं।"

इसी सन्दर्भ में 1868 ई में 'उर्दू का स्यापा' नाम से उन्होंने एक व्यंग्य कविता लिखी-

है है उर्दू हाय हाय। कहाँ सिधारी हाय हाय।
मेरी प्यारी हाय हाय। मुंशी मुल्ला हाय हाय।
बल्ला बिल्ला हाय हाय। रोये पीटें हाय हाय।
टाँग घसीटैं हाय हाय। सब छिन सोचौं हाय हाय।
डाढ़ी नोचौं हाय हाय। दुनिया उल्टी हाय हाय।
रोजी बिल्टी हाय हाय। सब मुखतारी हाय हाय।
किसने मारी हाय हाय। खबर नवीसी हाय हाय।
दाँत पीसी हाय हाय। एडिटर पोसी हाय हाय।
बात फरोशी हाय हाय। वह लस्सानी हाय हाय।
चरब-जुबानी हाय हाय। शोख बयानि हाय हाय।
फिर नहीं आनी हाय हाय।

अपनी इन्हीं कार्यों के कारण भारतेन्दु हिन्दी साहित्याकाश के एक दैदीप्यमान नक्षत्र बन गए और उनका युग भारतेन्दु युग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, कविवचनसुधा, हरिश्चन्द्र मैग्जीन, स्त्री बाला बोधिनी जैसे

प्रकाशन उनके विचारशील और प्रगतिशील सम्पादकीय दृष्टिकोण का परिचय देते हैं।

साम्राज्य-विरोधी चेतना तथा स्वदेश प्रेम का विकास

भारतेन्दु का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि उन्होने हिन्दी साहित्य को, और उसके साथ समाज को साम्राज्य-विरोधी दिशा में बढ़ने की प्रेरणा दी। 1870 में जब कविवचनसुधा में उन्होंने **लॉर्ड मेयो** को लक्ष्य करके 'लेवी प्राण लेवी' नामक लेख लिखा तब से हिन्दी साहित्य में एक नयी साम्राज्य-विरोधी चेतना का प्रसार आरम्भ हुआ। 6 जुलाई 1874 को कविवचनसुधा में लिखा कि जिस प्रकार अमेरिका उपनिवेशित होकर स्वतन्त्र हुआ उसी प्रकार भारत भी स्वतन्त्रता लाभ कर सकता है। उन्होंने तदीय समाज की स्थापना की, जिसके सदस्य स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की प्रतिज्ञा करते थे। भारतेन्दु ने विलायती कपड़ों के बहिष्कार की अपील करते हुए स्वदेशी का जो प्रतिज्ञा पत्र 23 मार्च, 1874 के 'कविवचनसुधा' में प्रकाशित किया, वह समूचे हिंदी समाज का प्रतिज्ञा पत्र बन गया। उसमें भारतेंदु ने कहा था,

"हमलोग सर्वान्तर्यामी, सब स्थल में वर्तमान, सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिरेंगे और जो कपड़ा कि पहिले से मोल ले चुके हैं और आज की मिती तक हमारे पास हैं उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे, पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे, हिंदुस्तान का ही बना कपड़ा पहिरेंगे। हम आशा रखते हैं कि इसको बहुत ही क्या प्रायः सब लोग स्वीकार करेंगे और अपना नाम इस श्रेणी में होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्र को अपनी मनीषा प्रकाशित करेंगे और सब देश हितैषी इस उपाय के बाद में अवश्य उद्योग करेंगे।"

सबसे पहले भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने ही साहित्य में जन भावनाओं और आकांक्षाओं को स्वर दिया था। पहली बार साहित्य में 'जन' का समावेश भारतेन्दु ने ही किया। उनके पहले काव्य में रीतिकालीन प्रवृत्तियों का ही बोलबाला था। साहित्य पतनशील सामन्ती संस्कृति का पोषक बन गया था, पर भारतेन्दु ने साहित्य को जनता की गरीबी, पराधीनता, विदेशी शासकों के अमानवीय शोषण के चित्रण और उसके विरोध का माध्यम बना दिया। अपने नाटकों, कवित्त, मुकरियों और प्रहसनों के माध्यम से उन्होंने अंग्रेजी राज पर कटाक्ष और प्रहार किए, जिसके चलते उन्हें अंग्रेजों का कोपभाजन भी बनना पड़ा।

भारतेंदु अंग्रेजों के शोषण तंत्र को भली-भांति समझते थे। अपनी पत्रिका कविवचनसुधा में उन्होंने लिखा था–

- "जब अंग्रेज विलायत से आते हैं प्रायः कैसे दरिद्र होते हैं और जब हिंदुस्तान से अपने विलायत को जाते हैं तब कुबेर बनकर जाते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि रोग और दुष्काल इन दोनों के मुख्य कारण अंग्रेज ही हैं।"
- यही नहीं, 20वीं सदी की शुरुआत में **दादाभाई नौरोजी** ने धन के अपवहन (ड्रेन ऑफ वेल्थ) के जिस सिद्धान्त को प्रस्तुत किया था, भारतेन्दु ने बहुत पहले ही शोषण के इस रूप को समझ लिया था। उन्होंने लिखा था–
- अंगरेजी राज सुखसाज सजे अति भारी, पर सब धन विदेश चलि जात ये ख्वारी।

अंग्रेज भारत का धन अपने यहां लेकर चले जाते हैं और यही देश की जनता की गरीबी और कष्टों का मूल कारण है, इस सच्चाई को भारतेंदु ने समझ लिया था। कविवचनसुधा में उन्होंने जनता का आह्वान किया था। "भाइयो! अब तो सन्नद्ध हो जाओ और ताल ठोक के इनके सामने खड़े तो हो जाओ। देखो भारतवर्ष का धन जिसमें जाने न पावे वह उपाय करो।"

भारत की सामाजिक और आर्थिक उन्नति के लिए प्रयत्न

भारतेन्दु की वैश्विक चेतना भी अत्यन्त प्रखर थी। उन्हें अच्छी तरह पता था कि विश्व के कौन से देश कैसे और कितनी उन्नति कर रहे हैं। इसलिए उन्होंने सन् 1884 में बलिया के दादरी मेले में 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है' पर अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया था। यह लेख उनकी अत्यन्त प्रगतिशील सोच का परिचायक भी है। इसमें उन्होंने लोगों से कुरीतियों और अंधविश्वासों को त्यागकर अच्छी-से-अच्छी शिक्षा प्राप्त करने, उद्योग-धंधों को विकसित करने, सहयोग एवं एकता पर बल देने तथा सभी क्षेत्रों में आत्मनिर्भर होने का आह्वान किया था। ददरी जैसे धार्मिक और लोक मेले के साहित्यिक मंच से भारतेंदु का यह उद्‌बोधन अगर देखा जाए तो आधुनिक भारतीय सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक चिंतन का प्रस्थानबिंदु है। भाषण का एक छोटा सा अंश देखिए-

"हम नहीं समझते कि इनको लाज भी क्यों नहीं आती कि उस समय में जबकि इनके पुरखों के पास कोई भी सामान नहीं था, तब उन लोगों ने जंगल में पत्ते और मिट्‌टी की कुटियों में बैठ करके बाँस की नालियों से जो ताराग्रह

आदि बेध करके उनकी गति लिखी है वह ऐसी ठीक है कि सोलह लाख रुपये के लागत की विलायत में जो दूरबीन बनी है उनसे उन ग्रहों को बेध करने में भी वही गति ठीक आती है और जब आज इस काल में हम लोगों को अंगरेजी विद्या के और जनता की उन्नति से लाखों पुस्तकें और हजारों यंत्र तैयार हैं, तब हम लोग निरी चुंगी के कतवार फेंकने की गाड़ी बन रहे हैं। यह समय ऐसा है कि उन्नति की मानो घुड़दौड़ हो रही है। अमेरिकन अंगरेज फरासीस आदि तुरकी ताजी सब सरपट्ट दौड़े जाते हैं। सबके जी में यही है कि पाला हमी पहले छू लें। उस समय हिन्दू काठियावाड़ी खाली खड़े-खड़े टाप से मिट्टी खोदते हैं। इनको औरों को जाने दीजिए जापानी टट्टुओं को हाँफते हुए दौड़ते देख करके भी लाज नहीं आती। यह समय ऐसा है कि जो पीछे रह जायेगा फिर कोटि उपाय किये भी आगे न बढ़ सकेगा। इस लूट में इस बरसात में भी जिसके सिर पर कम्बख्ती का छाता और आँखों में मूर्खता की पट्टी बँधी रहे, उन पर ईश्वर का कोप ही कहना चाहिए।"

विचारों की स्पष्टता और उसे विनोदप्रियता के साथ किस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है, इसका यह निबन्ध बेजोड़ उदाहरण है। देखिए, किस तरह भारत की चिंता इस निबन्ध में भारतेंदु व्यक्त करते हैं,

"बहुत लोग यह कहैंगे कि हमको पेट के धंधे के मारे छुट्टी ही नहीं रहती बाबा, हम क्या उन्नति करैं? तुम्हरा पेट भरा है तुमको दून की सूझती है। यह कहना उनकी बहुत भूल है। इंगलैंड का पेट भी कभी यों ही खाली था। उसने एक हाथ से पेट भरा, दूसरे हाथ से उन्नति की राह के कांटों को साफ किया।"

वास्तव में उनका यह लेख भारत दुर्दशा नामक उनके नाटक का एक तरह से वैचारिक विस्तार है। भारत दुर्दशा में वे कहते हैं,

रोअहुं सब मिलिकै आवहुं भारत भाई।
हा, हा! भारत दुर्दशा देखी न जाई।।

भारतेन्दु अच्छी तरह समझ चुके थे कि 'अंग्रेजी शासन भारतीयों के लाभ के लिए है' यह पूर्णतः खोखला दावा था और दुष्प्रचार था। अँग्रेज किस तरह भारत की संपदा लूट रहे थे, इसका संकेत भारतेन्दु ने 'कविवचनसुधा' के 7 मार्च, 1874 के अंक में अपनी टिप्पणी में दिया–

"सरकारी पक्ष का कहना है कि हिंदुस्तान में पहले सब लोग लड़ते-भिड़ते थे और आपस में गमनागमन न हो सकता था। यह सब सरकार की कृपा से हुआ। हिंदुस्तानियों का कहना है कि उद्योग और व्यापार बाकी नहीं, रेल आदि से भी

द्रव्य के बढ़ने की आशा नहीं है। रेलवे कंपनी वाले जो द्रव्य व्यय किया है, उसका व्याज सरकार को देना पड़ता है और उसे लेने वाले बहुधा विलायत के लोग हैं। कुल मिलाकर 26 करोड़ रुपया बाहर जाता है।"

भारतेन्दु स्त्री-पुरुष की समानता के इतने बड़े पैरोकार थे कि 'कविवचनसुधा' के 3 नवंबर, 1873 के अंक में उन्होंने लिखा–

"यह बात सिद्ध है कि पश्चिमोत्तर देश की कदापि उन्नति नहीं होगी, जब तक यहाँ की स्त्रियों की भी शिक्षा न होगी क्योंकि यदि पुरुष विद्वान होंगे और उनकी स्त्रियाँ मूर्ख तो उनमें आपस में कभी स्नेह न होगा और नित्य कलह होगी।"

भारतेन्दु ने अपने 'सत्य हरिश्चन्द्र नाटक' का समापन इस भरत-वाक्य से किया है–

- खलगनन सों सज्जन दुखी मत होइ, हरि पद रति रहै।
- उपधर्म छूटै सत्व निज भारत गहै, कर-दु:ख बहै
- बुध तजहिं मत्सर नारि-नर सम होंहिं, सब जग सुख लहै।
- तजि ग्राम कविता सुकवि जन की अमृत बानी सब कहैं।।

5

अज्ञेय

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन "अज्ञेय" को कवि, शैलीकार, कथा-साहित्य को एक महत्त्वपूर्ण मोड़ देने वाले कथाकार, ललित-निबन्धकार, सम्पादक और अध्यापक के रूप में जाना जाता है। इनका जन्म 7 मार्च 1911 को उत्तर प्रदेश के कसया, पुरातत्व-खुदाई शिविर में हुआ। बचपन लखनऊ, कश्मीर, बिहार और मद्रास में बीता। बी.एससी. करके अंग्रेजी में एम.ए. करते समय क्रांतिकारी आन्दोलन से जुड़कर बम बनाते हुए पकड़े गये और वहाँ से फरार भी हो गए। सन् 1930 ई. के अन्त में पकड़ लिये गये। अज्ञेय प्रयोगवाद एवं नई कविता को साहित्य जगत में प्रतिष्ठित करने वाले कवि हैं। अनेक जापानी हाइकु कविताओं को अज्ञेय ने अनूदित किया। बहुआयामी व्यक्तित्व के एकान्तमुखी प्रखर कवि होने के साथ-साथ वे एक अच्छे फोटोग्राफर और सत्यान्वेषी पर्यटक भी थे।

जीवन परिचय

प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा पिता की देख रेख में घर पर ही संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी और बांग्ला भाषा व साहित्य के अध्ययन के साथ हुई। 1925 में पंजाब से एंट्रेंस की परीक्षा पास की और उसके बाद मद्रास क्रिस्चन कॉलेज में दाखिल हुए। वहाँ से विज्ञान में इंटर की पढ़ाई पूरी कर 1927 में वे बी.एससी. करने के लिए लाहौर के फॅरमन कॉलेज के छात्र बने। 1929 में बी. एससी. करने के बाद एम.ए. में उन्होंने अंग्रेजी विषय लिया, पर क्रांतिकारी गतिविधियों में हिस्सा लेने के कारण पढ़ाई पूरी न हो सकी।

कार्यक्षेत्र

1930 से 1936 तक का समय विभिन्न जेलों में कटा। 1936-37 में 'सैनिक' और 'विशाल भारत' नामक पत्रिकाओं का संपादन किया। 1943 से 1946 तक ब्रिटिश सेना में रहे, इसके बाद इलाहाबाद से 'प्रतीक' नामक पत्रिका निकाली और ऑल इंडिया रेडियो की नौकरी स्वीकार की। देश-विदेश की यात्रएं कीं, जिसमें उन्होंने कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से लेकर जोधपुर विश्वविद्यालय तक में अध्यापन का काम किया। दिल्ली लौटे और दिनमान साप्ताहिक, नवभारत टाइम्स, अंग्रेजी पत्र वाक् और एवरीमैंस जैसी प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया। 1980 में उन्होंने 'वत्सलनिधि' नामक एक न्यास की स्थापना की, जिसका उद्देश्य साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में कार्य करना था। दिल्ली में ही 4 अप्रैल 1987 को उनकी मृत्यु हुई। 1964 में 'आँगन के पार द्वार' पर उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ और 1978 में 'कितनी नावों में कितनी बार' पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार।

प्रमुख कृतियां

कविता संग्रह–भग्नदूत 1933, चिन्ता 1942, इत्यलम् 1946, हरी घास पर क्षण भर 1949, बावरा अहेरी 1954, इन्द्रधनुष रौंदे हुये ये 1957, अरी ओ करुणा प्रभामय 1959, आँगन के पार द्वार 1961, कितनी नावों में कितनी बार (1967), क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1970), सागर मुद्रा (1970), पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1974), महावृक्ष के नीचे (1977), नदी की बाँक पर छाया (1981), प्रिजन डेज एण्ड अदर पोयम्स (अंग्रेजी में, 1946)।

कहानियाँ–विपथगा 1937, परम्परा 1944, कोठरीकी बात 1945, शरणार्थी 1948, जयदोल 1951

उपन्यास–शेखर एक जीवनी-प्रथम भाग(उत्थान)1941, द्वितीय भाग(संघर्ष)1944, नदीके द्वीप 1951, अपने अपने अजनबी 1961।

यात्रा वृतान्त–अरे यायावर रहेगा याद? 1943, एक बूँद सहसा उछली 1960।

निबंध संग्रह–सबरंग, त्रिशंकु, आत्मनेपद, आधुनिक साहित्य: एक आधुनिक परिदृश्य, आलवाल।

आलोचना–त्रिशंकु 1945, आत्मनेपद 1960, भवन्ती 1971, अद्यतन 1971 ई.।

संस्मरण–स्मृति लेखा

डायरियां–भवंती, अंतरा और शाश्वती।

विचार गद्य–संवत्सर

नाटक–उत्तरप्रियदर्शी

जीवनी–रामकमल राय द्वारा लिखित शिखर से सागर तक

संपादित ग्रंथ–आधुनिक हिन्दी साहित्य (निबन्ध संग्रह)1942, तार सप्तक (कविता संग्रह) 1943, दूसरा सप्तक (कविता संग्रह)1951, तीसरा सप्तक (कविता संग्रह), सम्पूर्ण 1959, नये एकांकी 1952, रूपांबरा 1960।

उनका लगभग समग्र काव्य सदानीरा (दो खंड) नाम से संकलित हुआ है तथा अन्यान्य विषयों पर लिखे गए सारे निबंध सर्जना और सन्दर्भ तथा केंद्र और परिधि नामक ग्रंथो में संकलित हुए हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के संपादन के साथ-साथ अज्ञेय ने तारसप्तक, दूसरा सप्तक और तीसरा सप्तक जैसे युगांतरकारी काव्य संकलनों का भी संपादन किया तथा पुष्करिणी और रूपांबरा जैसे काव्य-संकलनों का भी। वे वत्सलनिधि से प्रकाशित आधा दर्जन निबंध-संग्रहों के भी संपादक हैं। **प्रख्यात साहित्यकार** अज्ञेय ने यद्यपि कहानियां कम ही लिखीं और एक समय के बाद कहानी लिखना बिलकुल बंद कर दिया, परंतु हिन्दी कहानी को आधुनिकता की दिशा में एक नया और स्थायी मोड़ देने का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है। निस्संदेह वे आधुनिक साहित्य के एक शलाका-पुरुष थे जिसने हिंदी साहित्य में भारतेंदु के बाद एक दूसरे आधुनिक युग का प्रवर्तन किया।

अज्ञेय रचनावली

अज्ञेय रचनावली के 18 खंडों में उनकी समस्त रचनाओं को संग्रहित करने का प्रयास किया गया है। इसके संपादक कृष्णदत्त पालीवाल हैं।

इन खंडों की सामग्री का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

- काव्य,
- कहानियाँ,
- उपन्यास,
- उपन्यास,
- उपन्यास,
- भूमिकाएँ,

- यात्र-वृत्त,
- डायरी,
- निबन्ध,
- निबन्ध,
- निबन्ध,
- निबन्ध,
- संस्मरण, नाटक, निबन्ध,
- साक्षात्कार,
- साक्षात्कार और पत्र,
- अनुवाद।
- पुरस्कार/सम्मान,
- साहित्य अकादमी,
- भारतीय ज्ञानपीठ।

कविताएँ

- चुनी हुई कविताएँ।

नाटक

- उत्तर प्रियदर्शी,
- संस्मरण,
- वसंत का अग्रदूत,
- संवाद।

आत्मकथा

- 'अज्ञेय'—अपनी निगाह में,
- ऋण-स्वीकारी हूँ।

निबंध

- कला का स्वाभाव और उद्देश्य,
- कविता—श्रव्य से पाठ्य तक,
- काल का डमरु-नाद,

- छाया का जंगल,
- ताली तो छूट गयी,
- नई कविता–प्रयोग के आयाम,
- भारतीयता,
- मरुथल की सीपियाँ,
- रूढ़ि और मौलिकता,
- वैज्ञानिक सत्ता, मिथकीय सत्ता और कवि,
- वासुदेव प्याला,
- शब्द, मौन, अस्तित्व,
- स्मृति और काल,
- स्मृति और देश,
- संस्कृति और परिस्थिति,
- संस्कृति और परिस्थिति,
- साहित्य, संस्कृति और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया,
- साहित्य-बोध–आधुनिकता के तत्त्व,
- सौन्दर्य-बोध और शिवत्व-बोध।

डायरी

- मैं वह धनु हूँ।

यात्रावृत्त

- एक बूँद सहसा उछली,
- बीसवीं शती का गोलोक।

अन्य

- भूमिकाएँ,
- रचनावली,
- अज्ञेय रचनावली,
- खंड–1,
- संपूर्ण कविताएँ-1,
- खंड–2,

- संपूर्ण कविताएँ-2,
- खंड–3,
- संपूर्ण कहानियाँ,
- खंड–4,
- शेखर–एक जीवनी,
- खंड–5,
- अपने-अपने अजनबी,
- खंड–5,
- नदी के द्वीप,
- खंड–6,
- छाया मेखल,
- खंड–6,
- बारहखम्भा,
- खंड–6,
- बीनू भगत।

6

डॉ. धर्मवीर भारती

डॉ. धर्मवीर भारती आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख लेखक, कवि, नाटककार और सामाजिक विचारक थे। वे एक समय की प्रख्यात साप्ताहिक पत्रिका धर्मयुग के प्रधान संपादक भी थे।

डॉ. धर्मवीर भारती को 1972 में पद्मश्री से सम्मानित किया गया। उनका उपन्यास 'गुनाहों का देवता' सदाबहार रचना मानी जाती है। 'सूरज का सातवां घोड़ा' को कहानी कहने का अनुपम प्रयोग माना जाता है, जिस पर श्याम बेनेगल ने इसी नाम की फिल्म बनायी। 'अंधा युग' उनका प्रसिद्ध नाटक है। इब्राहीम अलकाजी, राम गोपाल बजाज, अरविन्द गौड़, रतन थियम, एम के रैना, मोहन महर्षि और कई अन्य भारतीय रंगमंच निर्देशकों ने इसका मंचन किया है।

जीवन परिचय

धर्मवीर भारती का जन्म 25 दिसंबर 1926 को इलाहाबाद के अतर सुइया मुहल्ले में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री चिरंजीव लाल वर्मा और माँ का श्रीमती चंदादेवी था। स्कूली शिक्षा डी. ए. वी. हाई स्कूल में हुई और उच्च शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय में। प्रथम श्रेणी में एम. ए. करने के बाद डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में सिद्ध साहित्य पर शोध-प्रबंध लिखकर उन्होंने पी-एच.डी. प्राप्त की।

घर और स्कूल से प्राप्त आर्यसमाजी संस्कार, इलाहाबाद और विश्वविद्यालय का साहित्यिक वातावरण, देश भर में होने वाली राजनैतिक हलचलें, बाल्यावस्था में ही पिता की मृत्यु और उससे उत्पन्न आर्थिक संकट इन सबने उन्हें अतिसंवेदनशील, तर्कशील बना दिया। उन्हें जीवन में दो ही शौक थे–अध्ययन और यात्रा। भारती के साहित्य में उनके विशद अध्ययन और यात्रा-अनुभवों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

'जानने की प्रक्रिया में होने और जीने की प्रक्रिया में जानने वाला मिजाज जिन लोगों का है उनमें मैं अपने को पाता हूँ।' (ठेले पर हिमालय)

उन्हें आर्यसमाज की चिंतन और तर्कशैली भी प्रभावित करती है और रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत भी। प्रसाद और शरत्चन्द्र का साहित्य उन्हें विशेष प्रिय था। आर्थिक विकास के लिए मार्क्स के सिद्धांत उनके आदर्श थे परंतु मार्क्सवादियों की अधीरता और मताग्रहता उन्हें अप्रिय थे। 'सिद्ध साहित्य' उनके शोध' का विषय था, उनके सटजिया सिद्धांत से वे विशेष रूप से प्रभावित थे। पश्चिमी साहित्यकारों में शैली आस्करवाइल्ड उन्हें विशेष प्रिय थे। भारती को फूलों का बेहद शौक था। उनके साहित्य में भी फूलों से संबंधित बिंब प्रचुरमात्रा में मिलते हैं।

आलोचकों में भारती जी को प्रेम और रोमांस का रचनाकार माना है। उनकी कविताओं, कहानियों और उपन्यासों में प्रेम और रोमांस का यह तत्व स्पष्ट रूप से मौजूद है। परंतु उसके साथ-साथ इतिहास और समकालीन स्थितियों पर भी उनकी पैनी दृष्टि रही है, जिसके संकेत उनकी कविताओं, कहानियों, उपन्यासों, नाटकों, आलोचना तथा संपादकीयों में स्पष्ट देखे जा सकते हैं। उनकी कहानियों-उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ के चित्र हैं। 'अंधा युग' में स्वातंत्र्योत्तर भारत में आई मूल्यहीनता के प्रति चिंता है। उनका बल पूर्व और पश्चिम के मूल्यों, जीवन-शैली और मानसिकता के संतुलन पर है, वे न तो किसी एक का अंधा विरोध करते हैं न अंधा समर्थन, परंतु क्या स्वीकार करना और क्या त्यागना है इसके लिए व्यक्ति और समाज की प्रगति को ही आधार बनाना होगां

'पश्चिम का अंधानुकरण करने की कोई जरूरत नहीं है, पर पश्चिम के विरोध के नाम पर मध्यकाल में तिरस्कृत मूल्यों को भी अपनाने की जरूरत नहीं है।'

उनकी दृष्टि में वर्तमान को सुधारने और भविष्य को सुखमय बनाने के लिए आम जनता के दु:ख दर्द को समझने और उसे दूर करने की आवश्यकता है। दु:ख तो उन्हें इस बात का है कि आज 'जनतंत्र' में 'तंत्र' शक्तिशाली लोगों के हाथों में चला गया है और 'जन' की ओर किसी का ध्यान ही नहीं है। अपनी रचनाओं के माध्यम से इसी 'जन' की आशाओं, आकांक्षाओं, विवशताओं, कष्टों को अभिव्यक्ति देने का प्रयास उन्होंने किया है।

कार्यक्षेत्र

1948 में 'संगम' सम्पादक श्री इलाचंद्र जोशी में सहकारी संपादक नियुक्त हुए। दो वर्ष वहाँ काम करने के बाद हिन्दुस्तानी अकादमी में अध्यापक नियुक्त हुए। सन् 1960 तक कार्य किया। प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापन के दौरान 'हिंदी साहित्य कोश' के सम्पादन में सहयोग दिया। 'निकष' पत्रिका निकाली तथा 'आलोचना' का सम्पादन भी किया। उसके बाद 'धर्मयुग' में प्रधान सम्पादक पद पर बम्बई आ गये।

1997 में डॉ. भारती ने अवकाश ग्रहण किया। 1999 में युवा कहानीकार उदय प्रकाश के निर्देशन में साहित्य अकादमी दिल्ली के लिए डॉ. भारती पर एक वृत्त चित्र का निर्माण भी हुआ है।

अलंकरण तथा पुरस्कार

1972 में पद्मश्री से अलंकृत डॉ. धर्मवीर भारती को अपने जीवन काल में अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए जिसमें से प्रमुख हैं–

- 1984 हल्दी घाटी श्रेष्ठ पत्रकारिता पुरस्कार,
- महाराणा मेवाड़ फाउंडेशन 1988,
- सर्वश्रेष्ठ नाटककार पुरस्कार संगीत नाटक अकादमी दिल्ली 1989,
- भारत भारती पुरस्कार उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान 1990,
- महाराष्ट्र गौरव, महाराष्ट्र सरकार 1994,
- व्यास सम्मान के के बिड़ला फाउंडेशन।

प्रमुख कृतियां

कहानी संग्रह–मुर्दों का गाँव, स्वर्ग और पृथ्वी, चाँद और टूटे हुए लोग, बंद गली का आखिरी मकान, साँस की कलम से, समस्त कहानियाँ एक साथ

काव्य रचनाएं–ठंडा लोहा, सात गीत वर्ष, कनुप्रिया, सपना अभी भी, आद्यन्त।

उपन्यास–गुनाहों का देवता, सूरज का सातवां घोड़ा, ग्यारह सपनों का देश, प्रारंभ व समापन।

निबंध–ठेले पर हिमालय, पश्यंती।

एकांकी व नाटक –नदी प्यासी थी, नीली झील, आवाज का नीलाम आदि।

पद्य नाटक–अंधा युग।

आलोचना–प्रगतिवाद–एक समीक्षा, मानव मूल्य और साहित्य।

भाषा

परिमार्जित खड़ीबोली, मुहावरों, लोकोक्तियों, देशज तथा विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग।

शैली

भावात्मक, वर्णनात्मक, शब्द चित्रत्मक आलोचनात्मक हास्य व्यंग्यात्मक।

7

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद हिन्दी कवि, नाटककार, उपन्यासकार तथा निबन्धकार थे। वे हिन्दी के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। उन्होंने हिन्दी काव्य में एक तरह से छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में न केवल कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई, बल्कि जीवन के सूक्ष्म एवं व्यापक आयामों के चित्रण की शक्ति भी संचित हुई और 'कामायनी' तक पहुँचकर वह काव्य प्रेरक शक्तिकाव्य के रूप में भी प्रतिष्ठित हो गया। बाद के प्रगतिशील एवं नई कविता दोनों धाराओं के प्रमुख आलोचकों ने उसकी इस शक्तिमत्ता को स्वीकृति दी। इसका एक अतिरिक्त प्रभाव यह भी हुआ कि खड़ीबोली हिन्दी काव्य की निर्विवाद सिद्ध भाषा बन गयी।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में इनके कृतित्व का गौरव अक्षुण्ण है। वे एक युगप्रवर्तक लेखक थे, जिन्होंने एक ही साथ कविता, नाटक, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में हिंदी को गौरवान्वित होने योग्य कृतियाँ दीं। कवि के रूप में वे निराला, पन्त, महादेवी के साथ छायावाद के प्रमुख स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं, नाटक लेखन में भारतेन्दु के बाद वे एक अलग धारा बहाने वाले युगप्रवर्तक नाटककार रहे, जिनके नाटक आज भी पाठक न केवल चाव से पढ़ते हैं, बल्कि उनकी अर्थगर्भिता तथा रंगमंचीय प्रासंगिकता भी दिनानुदिन बढ़ती ही गयी है। इस दृष्टि से उनकी महत्ता पहचानने एवं स्थापित करने में वीरेन्द्र नारायण, शांता गाँधी, सत्येन्द्र तनेजा एवं अब कई दृष्टियों से सबसे बढ़कर महेश आनन्द

का प्रशंसनीय ऐतिहासिक योगदान रहा है। इसके अलावा कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में भी उन्होंने कई यादगार कृतियाँ दीं। विविध रचनाओं के माध्यम से मानवीय करुणा और भारतीय मनीषा के अनेकानेक गौरवपूर्ण पक्षों का उद्‌घाटन। 48 वर्षो के छोटे से जीवन में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास और आलोचनात्मक निबंध आदि विभिन्न विधाओं में रचनाएँ की।

जीवनी

जयशंकर प्रसाद का जन्म माघ शुक्ल 10, संवत् 1946 वि. (तदनुसार 30 जनवरी 1889ई. दिन-गुरुवार) को काशी के सरायगोवर्धन में हुआ। इनके पितामह बाबू शिवरतन साहू दान देने में प्रसिद्ध थे और इनके पिता बाबू देवीप्रसाद जी कलाकारों का आदर करने के लिये विख्यात थे। किशोरावस्था के पूर्व ही माता और बड़े भाई का विद्रोह। कच्ची गृहस्थी में ही मौसा की लड़की से शादी कर ली और एक अन्य पत्नी का भी उल्लेख आता है। इनकी कुल सात संताने मानी गयी हैं, जिसमें छह पुत्रियां व एक पुत्र था।

प्रसाद जी की प्रारंभिक शिक्षा काशी में क्वींस कालेज में हुई, किंतु बाद में घर पर इनकी शिक्षा का व्यापक प्रबंध किया गया, जहाँ संस्कृत, हिंदी, उर्दू, तथा फारसी का अध्ययन इन्होंने किया। दीनबंधु ब्रह्मचारी जैसे विद्वान् इनके संस्कृत के अध्यापक थे। इनके गुरुओं में 'रसमय सिद्ध' की भी चर्चा की जाती है।

घर के वातावरण के कारण साहित्य और कला के प्रति उनमें प्रारंभ से ही रुचि थी और कहा जाता है कि नौ वर्ष की उम्र में ही उन्होंने 'कलाधर' के नाम से ब्रजभाषा में एक सवैया लिखकर 'रसमय सिद्ध' को दिखाया था। उन्होंने वेद, इतिहास, पुराण तथा साहित्य शास्त्र का अत्यंत गंभीर अध्ययन किया था। वे बाग-बगीचे तथा भोजन बनाने के शौकीन थे और शतरंज के खिलाड़ी भी थे। वे नियमित व्यायाम करनेवाले, सात्विक खान पान एवं गंभीर प्रकृति के व्यक्ति थे। वे नागरीप्रचारिणी सभा के उपाध्यक्ष भी थे। क्षय रोग से नवम्बर 14, 1937 (दिन-सोमवार) को प्रातःकाल (उम्र 47) उनका देहान्त काशी में हुआ।

कृतियाँ

काव्य

प्रसाद की काव्य रचनाएँ दो वर्गों में विभक्त है–काव्यपथ अनुसंधान की रचनाएँ और रससिद्ध रचनाएँ। आँसू, लहर तथा कामायनी दूसरे वर्ग की रचनाएँ हैं। उन्होंने काव्यरचना ब्रजभाषा में आरम्भ की और धीर-धीरे खड़ी बोली को अपनाते हुए इस भाँति अग्रसर हुए कि खड़ी बोली के मूर्धन्य कवियों में उनकी गणना की जाने लगी और वे युगवर्तक कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

शिक्षा

जयशंकर प्रसाद की शिक्षा घर पर ही आरम्भ हुई। संस्कृत, हिन्दी, फारसी, उर्दू के लिए शिक्षक नियुक्त थे। इनमें रसमय सिद्ध प्रमुख थे। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के लिए दीनबन्धु ब्रह्मचारी शिक्षक थे। कुछ समय के बाद स्थानीय क्वीन्स कॉलेज में प्रसाद का नाम लिख दिया गया, पर यहाँ पर वे आठवीं कक्षा तक ही पढ़ सके। प्रसाद एक अध्यवसायी व्यक्ति थे और नियमित रूप से अध्ययन करते थे।

पारिवारिक विपत्तियाँ

प्रसाद की बारह वर्ष की अवस्था थी, तभी उनके पिता का देहान्त हो गया। इसी के बाद परिवार में गृहक्लेश आरम्भ हुआ और पैतृक व्यवसाय को इतनी क्षति पहुँची कि वही 'सुँघनीसाहु का परिवार, जो वैभव में लोटता था, ऋण के भार से दब गया। पिता की मृत्यु के दो-तीन वर्षों के भीतर ही प्रसाद की माता का भी देहान्त हो गया और सबसे दुर्भाग्य का दिन वह आया, जब उनके ज्येष्ठ भ्राता शम्भूरतन चल बसे तथा सत्रह वर्ष की अवस्था में ही प्रसाद को एक भारी उत्तरदायित्व सम्भालना पड़ा। प्रसाद का अधिकांश जीवन वाराणसी में ही बीता था। उन्होंने अपने जीवन में केवल तीन-चार बार यात्राएँ की थी, जिनकी छाया उनकी कतिपय रचनाओं में प्राप्त हो जाती हैं। प्रसाद को काव्यसृष्टि की आरम्भिक प्रेरणा घर पर होने वाली समस्या पूर्तियों से प्राप्त हुई, जो विद्वानों की मण्डली में उस समय प्रचलित थी।

बहुमुखी प्रतिभा

प्रसाद जी का जीवन कुल 48 वर्ष का रहा है। इसी में उनकी रचना प्रक्रिया इसी विभिन्न साहित्यिक विधाओं में प्रतिफलित हुई कि कभी-कभी आश्चर्य होता है। कविता, उपन्यास, नाटक और निबन्ध सभी में उनकी गति समान है। किन्तु अपनी हर विद्या में उनका कवि सर्वत्र मुखरित है। वस्तुतः एक कवि की गहरी कल्पनाशीलता ने ही साहित्य को अन्य विधाओं में उन्हें विशिष्ट और व्यक्तिगत प्रयोग करने के लिये अनुप्रेरित किया। उनकी कहानियों का अपना पृथक् और सर्वथा मौलिक शिल्प है, उनके चरित्र-चित्रण का, भाषा-सौष्ठव का, वाक्यगठन का एक सर्वथा निजी प्रतिष्ठान है। उनके नाटकों में भी इसी प्रकार के अभिनव और श्लाघ्य प्रयोग मिलते हैं। अभिनेयता को दृष्टि में रखकर उनकी बहुत आलोचना की गई तो उन्होंने एक बार कहा भी था कि रंगमंच नाटक के अनुकूल होना चाहिये न कि नाटक रंगमंच के अनुकूल। उनका यह कथन ही नाटक रचना के आन्तरिक विधान को अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध कर देता है।

कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास-सभी क्षेत्रों में प्रसाद जी एक नवीन 'स्कूल' और नवीन जीवन-दर्शन की स्थापना करने में सफल हुये हैं। वे 'छायावाद' के संस्थापकों और उन्नायकों में से एक हैं। वैसे सर्वप्रथम कविता के क्षेत्र में इस नव-अनुभूति के वाहक वही रहे हैं और प्रथम विरोध भी उन्हीं को सहना पड़ा है। भाषा शैली और शब्द-विन्यास के निर्माण के लिये जितना संघर्ष प्रसाद जी को करना पडा है, उतना दूसरों को नहीं।

आरम्भिक रचनाएँ

प्रसाद की आरम्भिक रचनाएँ यद्यपि ब्रजभाषा में मिलती हैं, पर क्रमशः वे खड़ी बोली को अपनाते गये और इस समय उनकी ब्रजभाषा की जो रचनाएँ उपलब्ध हैं, उनका महत्त्व केवल ऐतिहासिक ही है। प्रसाद की ही प्रेरणा से 1909 ई. में उनके भांजे अम्बिका प्रसाद गुप्त के सम्पादकत्व में "इन्दु" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। प्रसाद इसमें नियमित रूप से लिखते रहे और उनकी आरम्भिक रचनाएँ इसी के अंकों में देखी जा सकती हैं।

संस्करण

हिमाद्री तुंग श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती स्वयं प्रभो समुज्ज्वला, स्वतंत्रता पुकारती।

अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञा सोच लो प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो बढे चलो। असंख्य कीर्ति रश्मियाँ, विकीर्ण दिव्य दाह सी सपूत मात्रभूमि के, रुको न शूर साहसी। अराती सैन्य सिन्धु में, सुवाढ़ वाग्नी से जलो प्रवीर हो जयी बनो, बढ़े चलो बढ़े चलो।

कालक्रम के अनुसार 'चित्रधार' प्रसाद का प्रथम संग्रह है। इसका प्रथम संस्करण 1918 ई. में हुआ। इसमें कविता, कहानी, नाटक, निबन्ध सभी का संकलन था और भाषा ब्रज तथा खड़ी बोली दोनों थी। लगभग दस वर्ष के बाद 1928 में जब इसका दूसरा संस्करण आया, तब इसमें ब्रजभाषा की रचनाएँ ही रखी गयीं। साथ ही इसमें प्रसाद की आरम्भिक कथाएँ भी संकलित हैं। 'चित्रधार' की कविताओं को दो प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक खण्ड उन आख्यानक कविताओं अथवा कथा काव्यों का है, जिनमें प्रबन्धात्मकता है। अयोध्या का उद्धार, वनमिलन, और प्रेमराज्य तीन कथाकाव्य इसमें संग्रहीत हैं। 'अयोध्या का उद्धार' में लव द्वारा अयोध्या को पुनः बसाने की कथा है। इसकी प्रेरणा कालिदास का 'रघुवंश' है। 'वनमिलन' में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम' की प्रेरणा है। 'प्रेमराज्य' की कथा ऐतिहासिक है। 'चित्रधार' की स्फुट रचनाएँ प्रकृतिविषयक तथा भक्ति और प्रेमसम्बन्धिनी है। 'कानन कुसुम' प्रसाद की खड़ीबोली की कविताओं का प्रथम संग्रह है। यद्यपि इसके प्रथम संस्करण में ब्रज और खड़ी बोली दोनों की कविताएँ हैं, पर दूसरे संस्करण (1918 ई.) तथा तीसरे संस्करण (1929 ई.) में अनेक परिवर्तन दिखायी देते हैं और अब उसमें केवल खड़ीबोली की कविताएँ हैं। कवि के अनुसार यह 1966 वि. (सन् 1909 ईसवी) से 1974 वि. (सन् 1917 ईसवी) तक की कविताओं का संग्रह है। इसमें भी ऐतिहासिक तथा पौराणिक कथाओं के आधार पर लिखी गयी कुछ कविताएँ हैं।

रचनाएँ

प्रसाद जी की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है-

कामायनी

कामायनी महाकाव्य कवि प्रसाद की अक्षय कीर्ति का स्तम्भ है। भाषा, शैली और विषय-तीनों ही की दृष्टि से यह विश्व-साहित्य का अद्वितीय ग्रन्थ है। 'कामायनी' में प्रसादजी ने प्रतीकात्मक पात्रों के द्वारा मानव के मनोवैज्ञानिक विकास को प्रस्तुत किया है तथा मानव जीवन में श्रद्धा और बुद्धि के समन्वित जीवन-दर्शन को प्रतिष्ठा प्रदान की है।

आँसू

आँसू कवि के मर्मस्पर्शी वियोगपरक उदगारों का प्रस्तुतीकरण है।

लहर

यह मुक्तक रचनाओं का संग्रह है।

झरना

प्रसाद जी की छायावादी शैली में रचित कविताएँ इसमें संग्रहीत हैं।

चित्रधार

चित्रधार प्रसाद जी की ब्रज में रची गयी कविताओं का संग्रह है।

गद्य रचनाएँ

प्रसाद जी की प्रमुख गद्य रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

नाटक

चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, स्कन्दगुप्त, जनमेजय का नागयज्ञ, एक घूँट, विशाख, अजातशत्रु आदि।

कहानी–संग्रह

प्रतिध्वनि, छाया, आकाशदीप, आँधी तथा इन्द्रजाल आपके कहानी संग्रह हैं।

उपन्यास

तितली और कंकाल।

निबन्ध

काव्य और कला।

अन्य रचनाएँ

अन्य कविताओं में विनय, प्रकृति, प्रेम तथा सामाजिक भावनाएँ हैं। 'कानन कुसुम' में प्रसाद ने अनुभूति और अभिव्यक्ति की नयी दिशाएँ खोजने का प्रयत्न

किया है। इसके अनन्तर कथाकाव्यों का समय आया है। 'प्रेम पथिक' का ब्रजभाषा स्वरूप सबसे पहले 'इन्दु' (1909 ई.) में प्रकाशित हुआ था और 1970 वि. में कवि ने इसे खड़ीबोली में रूपान्तरित किया। इसकी विज्ञप्ति में उन्होंने स्वयं कहा है कि "यह काव्य ब्रजभाषा में आठ वर्ष पहले मैंने लिखा था।" 'प्रेम पथिक' में एक भावमूलक कथा है। जिसके माध्यम से आदर्श प्रेम की व्यंजना की गयी है।

प्रकाशन

'करुणालय' की रचना गीतिनाट्य के आधार पर हुई है। इसका प्रथम प्रकाशन 'इन्दु' (1913 ई.) में हुआ। 'चित्रधार' के प्रथम संस्करण में भी यह है। 1928 ई. में इसका पुस्तक रूप में स्वतन्त्र प्रकाशन हुआ। इसमें राजा हरिश्चन्द्र की कथा है। 'महाराणा का महत्त्व' 1914 ई. में 'इन्दु' में प्रकाशित हुआ था। यह भी 'चित्रधार' में संकलित था, पर 1928 ई. में इसका स्वतन्त्र प्रकाशन हुआ। इसमें महाराणा प्रताप की कथा है। 'झरना' का प्रथम प्रकाशन 1918 में हुआ था। आगामी संस्करणों में कुछ परिवर्तन किए गए। इसकी अधिकांश कविताएँ 1914–1917 के बीच लिखी गयीं, यद्यपि कुछ रचनाएँ बाद की भी प्रतीत होती हैं। 'झरना' में प्रसाद के व्यक्तित्व का प्रथम बार स्पष्ट प्रकाशन हुआ है और इसमें आधुनिक काव्य की प्रवृत्तियों को अधिक मुखर रूप में देखा जा सकता है। इसमें छायावाद युग का प्रतिष्ठापन माना जाता है। 'आँसू' प्रसाद की एक विशिष्ट रचना है। इसका प्रथम संस्करण 1982 वि. (1925 ई.) में निकला था। दूसरा संस्करण 1990 वि. (1933 ई.) में प्रकाशित हुआ। 'आँसू' एक श्रेष्ठ गीतिकाव्य है, जिसमें कवि की प्रेमानुभूति व्यंजित है। इसका मूलस्वर विषाद का है। पर अन्तिम पंक्तियों में आशा–विश्वास के स्वर हैं। 'लहर' में प्रसाद की सर्वोत्तम कविताएँ संकलित हैं। इसमें कवि की प्रौढ़ रचनाएँ हैं। इसका प्रकाशन 1933 ई. में हुआ। 'कामायनी' प्रसाद का निबन्ध काव्य है। इसका प्रथम संस्करण 1936 ई. में प्रकाशित हुआ था। कवि का गौरव इस महाकाव्य की रचना से बहुत बढ़ गया। इसमें आदि मानव मनु की कथा है, पर कवि ने अपने युग के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किया है।

पक्ष

प्रसाद जी के काव्य की भावपक्षीय तथा कलापक्षीय विशेषताएँ निम्नवत् हैं–

भाव पक्ष

बीती विभावरी जाग री!
अम्बर पनघट में डुबो रही
तारा घट ऊषा नागरी।
खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा
किसलय का अंचल डोल रहा
लो यह लतिका भी भर लाई
मधु मुकुल नवल रस गागरी।
अधरों में राग अमंद पिये
अलकों में मलयज बंद किये
तू अब तक सोर्ह्इ है आली
आँखों में भरे विहाग री।

प्रसाद जी की रचनाओं में जीवन का विशाल क्षेत्र समाहित हुआ है। प्रेम, सौन्दर्य, देश-प्रेम, रहस्यानुभूति, दर्शन, प्रकृति चित्रण और धर्म आदि विविध विषयों को अभिनव और आकर्षक भंगिमा के साथ आपने काव्यप्रेमियों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। ये सभी विषय कवि की शैली और भाषा की असाधारणता के कारण अछूते रूप में सामने आये हैं। प्रसाद जी के काव्य साहित्य में प्राचीन भारतीय संस्कृति की गरिमा और भव्यता बड़े प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत हुई है। आपके नाटकों के गीत तथा रचनाएँ भारतीय जीवन मूल्यों को बड़ी शालीनता से उपस्थित करती हैं। प्रसाद जी ने राष्ट्रीय गौरव और स्वाभिमान को अपने साहित्य में सर्वत्र स्थान दिया है। आपकी अनेक रचनाएँ राष्ट्र प्रेम की उत्कृष्ट भावना जगाने वाली हैं। प्रसाद जी ने प्रकृति के विविध पक्षों को बड़ी सजीवता से चित्रित किया है। प्रकृति के सौम्य-सुन्दर और विकृत-भयानक, दोनों स्वरूप उनकी रचनाओं में प्राप्त होते हैं।

इसके अतिरिक्त प्रकृति का आलंकारिक, मानवीकृत, उद्दीपक और उपदेशिका स्वरूप भी प्रसादजी के काव्य में प्राप्त होता है। 'प्रसाद' प्रेम और आनन्द के कवि हैं। प्रेम-मनोभाव का बड़ा सूक्ष्म और बहुविध निरूपण आपकी रचनाओं में हुआ है। प्रेम का वियोग-पक्ष और संयोग-पक्ष, दोनों ही पूर्ण छवि के साथ विद्यमान हैं। 'आँसू' आपका प्रसिद्ध वियोग काव्य है। उसके एक-एक छन्द में विरह की सच्ची पीड़ा का चित्र विद्यमान है, यथा-

जो धनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति-सी छायी।
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आयी।।

प्रसादजी का सौन्दर्य वर्णन भी सजीव, सटीक और मनमोहक होता है। श्रद्धा के सौन्दर्य का एक शब्द चित्र दर्शनीय है-

नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।।

'प्रसाद' हिन्दी काव्य में छायावादी प्रवृत्ति के प्रवर्तक हैं। 'आँसू' और 'कामायनी' आपके छायावादी कवित्व के परिचायक हैं। छायावादी काव्य की सभी विशेषताएँ आपकी रचनाओं में प्राप्त होती हैं।

प्रसादजी भावों के तीव्रता और मूर्ता प्रदान करने के लिए प्रतीकों का सटीक प्रयोग करते हैं। प्रसाद का काव्य मानव जीवन को पुरुषार्थ और आशा का संदेश देता है। प्रसाद का काव्य मानवता के समग्र उत्थान और चेतना का प्रतिनिधि है। उसमें मानव कल्याण के स्वर हैं। कवि 'प्रसाद' ने अपनी रचनाओं में नारी के विविध, गौरवमय स्वरूपों के अभिनव चित्र उपस्थित किए हैं।

कला पक्ष

'प्रसाद' के काव्य का कलापक्ष भी पूर्ण सशक्त और संतुलित है। उनकी भाषा, शैली, अलंकरण, छन्द-योजना, सभी कुछ एक महाकवि के स्तरानुकूल हैं।

भाषा

प्रसाद जी की भाषा के कई रूप उनके काव्य की विकास यात्र में दिखाई पड़ते हैं। आपने आरम्भ ब्रजभाषा से किया और फिर खड़ीबोली को अपनाकर उसे परिष्कृत, प्रवाहमयी, संस्कृतनिष्ठ भाषा के रूप में अपनी काव्य भाषा बना लिया। प्रसाद जी का शब्द चयन ध्वन्यात्मक सौन्दर्य से भी समन्वित है, यथा-

खग कुल कुल कुल-सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा।

प्रसाद जी ने लाक्षणिक शब्दावली के प्रयोग द्वारा अपनी रचनाओं में मार्मिक सौन्दर्य की सृष्टि की है।

शैली

प्रसाद जी की काव्य शैली में परम्परागत तथा नव्य अभिव्यक्ति कौशल का सुन्दर समन्वय है। उसमें ओज, माधुर्य और प्रसाद-तीनों गुणों की सुसंगति है। विषय और भाव के अनुकूल विविध शैलियों का प्रौढ़ प्रयोग उनके काव्य में प्राप्त होता है। वर्णनात्मक, भावात्मक, आलंकारिक, सूक्तिपरक, प्रतीकात्मक आदि शैली-रूप उनकी अभिव्यक्ति को पूर्णता प्रदान करते हैं। वर्णनात्मक शैली में शब्द चित्रंकन की कुशलता दर्शनीय होती है।

अलंकरण

प्रसाद जी की दृष्टि साम्यमूलक अलंकारों पर ही रही है। शब्दालंकार अनायास ही आए हैं। रूपक, रूपकातिशयोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीक आदि आपके प्रिय अलंकार हैं।

छन्द

प्रसाद जी ने विविध छन्दों के माध्यम से काव्य को सफल अभिव्यक्ति प्रदान की है। भावानुसार छन्द-परिवर्तन 'कामायनी' में दर्शनीय है। 'आँसू' के छन्द उसके विषय में सर्वधा अनुकूल हैं। गीतों का भी सफल प्रयोग प्रसादजी ने किया है। भाषा की तत्समता, छन्द की गेयता और लय को प्रभावित नहीं करती है। 'कामायनी' के शिल्पी के रूप में प्रसादजी न केवल हिन्दी साहित्य की अपितु विश्व साहित्य की विभूति हैं। आपने भारतीय संस्कृति के विश्वजनीन सन्दर्भों को प्रस्तुत किया है तथा इतिहास के गौरवमय पृष्ठों को समक्ष लाकर हर भारतीय हृदय को आत्म-गौरव का सुख प्रदान किया है। हिन्दी साहित्य के लिए प्रसाद जी माँ सरस्वती का प्रसाद हैं।

छायावाद की स्थापना

जयशंकर प्रसाद ने हिंदी काव्य में छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई और वह काव्य की सिद्ध भाषा बन गई। वे छायावाद के प्रतिष्ठापक ही नहीं, अपितु छायावादी पद्धति पर सरस संगीतमय गीतों के लिखनेवाले श्रेष्ठ कवि भी बने। काव्यक्षेत्र में प्रसाद की कीर्ति का मूलाधार 'कामायनी' है। खड़ी बोली का यह अद्वितीय महाकाव्य मनु और श्रद्धा को आधार बनाकर रचित मानवता को

विजयिनी बनाने का संदेश देता है। यह रूपक कथाकाव्य भी है जिसमें मन, श्रद्धा और इड़ा (बुद्धि) के योग से अखंड आनंद की उपलब्धि का रूपक प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर संयोजित किया गया है। उनकी यह कृति छायावाद ओर खड़ी बोली की काव्यगरिमा का ज्वलंत उदाहरण है। सुमित्रानन्दन पंत इसे 'हिंदी में ताजमहल के समान' मानते हैं। शिल्पविधि, भाषासौष्ठव एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से इसकी तुलना खड़ी बोली के किसी भी काव्य से नहीं की जा सकती है। जयशंकर प्रसाद ने अपने दौर के पारसी रंगमंच की परंपरा को अस्वीकारते हुए भारत के गौरवमय अतीत के अनमोल चरित्रों को सामने लाते हुए अविस्मरनीय नाटकों की रचना की। उनके नाटक स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त आदि में स्वर्णिम अतीत को सामने रखकर मानों एक सोये हुए देश को जागने की प्रेरणा दी जा रही थी। उनके नाटकों में देशप्रेम का स्वर अत्यंत दर्शनीय है और इन नाटकों में कई अत्यंत सुंदर और प्रसिद्ध गीत मिलते हैं। 'हिमाद्रि तुंग शृंग से', 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' जैसे उनके नाटकों के गीत सुप्रसिद्ध रहे हैं।

निधन

जयशंकर प्रसाद जी का देहान्त 15 नवम्बर, सन् 1937 ई. में हो गया। प्रसाद जी भारत के उन्नत अतीत का जीवित वातावरण प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त थे। उनकी कितनी ही कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें आदि से अंत तक भारतीय संस्कृति एवं आदर्शो की रक्षा का सफल प्रयास किया गया है। 'आँसू' ने उनके हृदय की उस पीड़ा को शब्द दिए जो उनके जीवन में अचानक मेहमान बनकर आई और हिन्दी भाषा को समृद्ध कर गई।

प्रेम पथिक

उन्होंने हिंदी काव्य में छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई और वह काव्य की सिद्ध भाषा बन गई। उनकी सर्वप्रथम छायावादी रचना 'खोलो द्वार' 1914 ई. में इंदु में प्रकाशित हुई। वे छायावाद के प्रतिष्ठापक ही नहीं अपितु छायावादी पद्धति पर सरस संगीतमय गीतों के लिखनेवाले श्रेष्ठ कवि भी हैं। उन्होंने हिंदी में 'करुणालय' द्वारा गीत नाट्य का भी आरंभ किया। उन्होंने भिन्न तुकांत काव्य लिखने के लिये मौलिक छंदचयन किया और अनेक छंद का संभवत: उन्होंने सबसे पहले प्रयोग किया। उन्होंने नाटकीय ढंग पर काव्य-कथा-शैली का

मनोवैज्ञानिक पथ पर विकास किया। साथ ही कहानी कला की नई टेकनीक का संयोग काव्यकथा से कराया। प्रगीतों की ओर विशेष रूप से उन्होंने गद्य साहित्य को संपुष्ट किया और नीरस इतिवृत्तात्मक काव्यपद्धति को भावपद्धति के सिंहासन पर स्थापित किया।

कहानी

कथा के क्षेत्र में प्रसाद जी आधुनिक ढंग की कहानियों के आरंभकर्ता माने जाते हैं। सन् 1912 ई. में 'इंदु' में उनकी पहली कहानी 'ग्राम' प्रकाशित हुई। उन्होंने कुल 72 कहानियाँ लिखी हैं।

कहानी संग्रह

- छाया,
- प्रतिध्वनि,
- आकाशदीप,
- आंधी,
- इन्द्रजाल।

उनकी अधिकतर कहानियों में भावना की प्रधानता है, किंतु उन्होंने यथार्थ की दृष्टि से भी कुछ श्रेष्ठ कहानियाँ लिखी हैं। उनकी वातावरणप्रधान कहानियाँ अत्यंत सफल हुई हैं। उन्होंने ऐतिहासिक, प्रागैतिहासिक एवं पौराणिक कथानकों पर मौलिक एवं कलात्मक कहानियाँ लिखी हैं। भावना-प्रधान प्रेमकथाएँ, समस्यामूलक कहानियाँ लिखी हैं। भावना प्रधान प्रेमकथाएँ, समस्यामूलक कहानियाँ, रहस्यवादी, प्रतीकात्मक और आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उत्तम कहानियाँ, भी उन्होंने लिखी हैं। ये कहानियाँ भावनाओं की मिठास तथा कवित्व से पूर्ण हैं।

प्रसाद जी भारत के उन्नत अतीत का जीवित वातावरण प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त थे। उनकी कितनी ही कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें आदि से अंत तक भारतीय संस्कृति एवं आदर्शो की रक्षा का सफल प्रयास किया गया है। उनकी कुछ श्रेष्ठ कहानियों के नाम हैं—आकाशदीप, गुंडा, पुरस्कार, सालवती, स्वर्ग के खंडहर में आँधी, इंद्रजाल, छोटा जादूगर, बिसाती, मधुआ, विरामचिह्न, समुद्रसंतरण। अपनी कहानियों में जिन अमर चरित्रों की उन्होंने सृष्टि की है, उनमें से कुछ हैं चंपा, मधुलिका, लैला, इरावती, सालवती और मधुआ का शराबी, गुंडा का नन्हकूसिंह और घीसू जो अपने अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं।

उपन्यास

प्रसाद ने तीन उपन्यास लिखे हैं। 'कंकाल', में नागरिक सभ्यता का अंतर यथार्थ उद्घाटित किया गया है। 'तितली' में ग्रामीण जीवन के सुधार के संकेत हैं। प्रथम यथार्थवादी उपन्यास है, दूसरे में आदर्शोन्मुख यथार्थ है। इन उपन्यासों के द्वारा प्रसाद जी हिंदी में यथार्थवादी उपन्यास लेखन के क्षेत्र में अपनी गरिमा स्थापित करते हैं। 'इरावती' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया इनका अधूरा उपन्यास है, जो रोमांस के कारण ऐतिहासिक रोमांस के उपन्यासों में विशेष आदर का पात्र है। इन्होंने अपने उपन्यासों में ग्राम, नगर, प्रकृति और जीवन का मार्मिक चित्रण किया है, जो भावुकता और कवित्व से पूर्ण होते हुए भी प्रौढ़ लोगों की शैल्पिक जिज्ञासा का समाधान करता है।

नाटक

प्रसाद ने आठ ऐतिहासिक, तीन पौराणिक और दो भावात्मक, कुल 13 नाटकों की सर्जना की। 'कामना' और 'एक घूँट' को छोड़कर ये नाटक मूलत: इतिहास पर आधृत हैं। इनमें महाभारत से लेकर हर्ष के समय तक के इतिहास से सामग्री ली गई है। वे हिंदी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं। उनके नाटकों में सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना इतिहास की भित्ति पर संस्थित है–

- स्कंदगुप्त,
- चंद्रगुप्त,
- ध्रुवस्वामिनी,
- जन्मेजय का नाग यज्ञ,
- राज्यश्री,
- कामना,

एक घूंट।

जयशंकर प्रसाद ने अपने दौर के पारसी रंगमंच की परंपरा को अस्वीकारते हुए भारत के गौरवमय अतीत के अनमोल चरित्रों को सामने लाते हुए अविस्मरनीय नाटकों की रचना की। उनके नाटक स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त आदि में स्वर्णिम अतीत को सामने रखकर मानों एक सोये हुए देश को जागने की प्रेरणा दी जा रही थी। उनके नाटकों में देशप्रेम का स्वर अत्यन्त दर्शनीय है और इन नाटकों में कई अत्यन्त सुन्दर और प्रसिद्ध गीत मिलते हैं। 'हिमाद्रि तुंग शृंग से', 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' जैसे उनके नाटकों के गीत सुप्रसिद्ध रहे हैं।

इनके नाटकों पर अभिनेय न होने का आरोप है। आक्षेप लगता रहा है कि वे रंगमंच के हिसाब से नहीं लिखे गए है जिसका कारण यह बताया जाता है कि इनमें काव्यतत्व की प्रधानता, स्वगत कथनों का विस्तार, गायन का बीच बीच में प्रयोग तथा दृश्यों का त्रुटिपूर्ण संयोजन है। किंतु उनके अनेक नाटक सफलतापूर्वक अभिनीत हो चुके हैं। उनके नाटकों में प्राचीन वस्तुविन्यास और रसवादी भारतीय परंपरा तो है ही, साथ ही पारसी नाटक कंपनियों, बांग्ला तथा भारतेंदुयुगीन नाटकों एवं शेक्सपियर की नाटकीय शिल्पविधि के योग से उन्होंने नवीन मार्ग ग्रहण किया है। उनके नाटकों के आरंभ और अंत में उनका अपना मौलिक शिल्प है जो अत्यंत कलात्मक है। उनके नायक और प्रतिनायक दोनों चारित्रिक दृष्टि के गठन से अपनी विशेषता से मंडित हैं। इनकी नायिकाएँ भी नारीसुलभ गुणों से, प्रेम, त्याग, उत्सर्ग, भावुक उदारता से पूर्ण हैं। उन्होंने अपने नाटकों में जहाँ राजा, आचार्य, सैनिक, वीर और कूटनीतिज्ञ का चित्रण किया है वहीं ओजस्वी, महिमाशाली स्त्रियों और विलासिनी, वासनामयी तथा उग्र नायिकाओं का भी चित्रण किया है। चरित्रचित्रण उनके अत्यंत सफल हैं। चरित्रचित्रण की दृष्टि से उन्होंने नाटकों में राजश्री एवं चाणक्य को अमर कर दिया है। नाटकों में इतिहास के आधार पर वर्तमान समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रस्तुत करते हुए वे मिलते हैं। किंतु गंभीर चिंतन के साथ स्वच्छंद काव्यात्मक दृष्टि उनके समाधान के मूल में है। कथोपकथन स्वाभाविक है किंतु उनकी भाषा संस्कृतगर्भित है। नाटकों में दार्शनिक गंभीतरता का बाहुल्य है पर वह गद्यात्मक न होकर सरस है। उन्होंने कुछ नाटकों में स्वगत का भी प्रयोग किया है किंतु ऐसे नाटक केवल चार हैं। भारतीय नाट्य परंपरा में विश्वास करने के कारण उन्होंने नाट्यरूपक 'कामना' के रूप में प्रस्तुत किया। ये नाटक प्रभाव की एकता लाने में पूर्ण सफल हैं। अपनी कुछ त्रुटियों के बावजूद प्रसाद जी नाटककार के रूप में हिंदी में अप्रतिम हैं।

पुरस्कार

जयशंकर प्रसाद को 'कामायनी' पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ था।

8

रामधारी सिंह 'दिनकर'

रामधारी सिंह 'दिनकर' हिन्दी के एक प्रमुख लेखक, कवि व निबन्धकार थे। वे आधुनिक युग के श्रेष्ठ वीर रस के कवि के रूप में स्थापित हैं।

'दिनकर' स्वतन्त्रता पूर्व एक विद्रोही कवि के रूप में स्थापित हुए और स्वतन्त्रता के बाद 'राष्ट्रकवि' के नाम से जाने गये। वे छायावादोत्तर कवियों की पहली पीढ़ी के कवि थे। एक ओर उनकी कविताओ में ओज, विद्रोह, आक्रोश और क्रान्ति की पुकार है तो दूसरी ओर कोमलश्रृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इन्हीं दो प्रवृत्तियों का चरम उत्कर्ष हमें उनकी 'कुरुक्षेत्र' और 'उर्वशी' नामक कृतियों में मिलता है।

'दिनकर' जी का जन्म 24 सितंबर 1908 को बिहार के बेगूसराय जिले के सिमरिया गाँव में हुआ था। उन्होंने पटना विश्वविद्यालय से इतिहास, राजनीति विज्ञान में बीए किया। उन्होंने संस्कृत, बांग्ला, अंग्रेजी और उर्दू का गहन अध्ययन किया था। बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे एक विद्यालय में अध्यापक हो गये। 1934 से 1947 तक बिहार सरकार की सेवा में सब-रजिस्टार और प्रचार विभाग के उपनिदेशक पदों पर कार्य किया। 1950 से 1952 तक मुजफ्फरपुर कालेज में हिन्दी के विभागाध्यक्ष रहे, भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति के पद पर कार्य किया और उसके बाद भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार बने।

उन्हें पद्म विभूषण की उपाधि से भी अलंकृत किया गया। उनकी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' के लिये साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा 'उर्वशी' के

लिये भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया। अपनी लेखनी के माध्यम से वह सदा अमर रहेंगे।

द्वापर युग की ऐतिहासिक घटना महाभारत पर आधारित उनके प्रबन्ध काव्य 'कुरुक्षेत्र' को विश्व के 100 सर्वश्रेष्ठ काव्यों में 74वाँ स्थान दिया गया।

1947 में देश स्वाधीन हुआ और वह बिहार विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रध्यापक व विभागाध्यक्ष नियुक्त होकर मुजफ्फरपुर पहुँचे। 1952 में जब भारत की प्रथम संसद का निर्माण हुआ, तो उन्हें राज्यसभा का सदस्य चुना गया और वह दिल्ली आ गए। दिनकर 12 वर्ष तक संसद-सदस्य रहे, बाद में उन्हें सन 1964 से 1965 ई. तक भागलपुर विश्वविद्यालय का कुलपति नियुक्त किया गया। लेकिन अगले ही वर्ष भारत सरकार ने उन्हें 1965 से 1971 ई. तक अपना हिन्दी सलाहकार नियुक्त किया और वह फिर दिल्ली लौट आए। फिर तो ज्वार उमड़ा और 'रेणुका', 'हुंकार', 'रसवंती' और द्वंद्वगीत रचे गए। 'रेणुका' और 'हुंकार' की कुछ रचनाऐं यहाँ-वहाँ प्रकाश में आईं और अग्रेज प्रशासकों को समझते देर न लगी कि वे एक गलत आदमी को अपने तंत्र का अंग बना बैठे हैं और दिनकर की फाइल तैयार होने लगी, बात-बात पर कैफियत तलब होती और चेतावनियाँ मिला करतीं। चार वर्ष में बाईस बार उनका तबादला किया गया।

रामधारी सिंह 'दिनकर' स्वभाव से सौम्य और मृदुभाषी थे, लेकिन जब बात देश के हित-अहित की आती थी तो वह बेबाक टिप्पणी करने से कतराते नहीं थे। रामधारी सिंह 'दिनकर' ने तीन पंक्तियां पंडित जवाहरलाल नेहरू के खिलाफ संसद में सुनाई थी, जिससे देश में भूचाल मच गया था। दिलचस्प बात यह है कि राज्यसभा सदस्य के तौर पर दिनकर का चुनाव पंडित नेहरू ने ही किया था, इसके बावजूद नेहरू की नीतियों की मुखालफत करने से वे नहीं चूके–

देखने में देवता सदृश्य लगता है
बंद कमरे में बैठकर गलत हुक्म लिखता है।
जिस पापी को गुण नहीं गोत्र प्यारा हो,
समझो उसी ने हमें मारा है।

1962 में चीन से हार के बाद संसद में दिनकर ने इस कविता का पाठ किया, जिससे तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू का सिर झुक गया था। यह घटना आज भी भारतीय राजनीति के इतिहास की चुनिंदा क्रांतिकारी घटनाओं में से एक है।

रे रोक युद्धिष्ठिर को न यहां, जाने दे उनको स्वर्गधीर।
फिरा हमें गांडीव गदा लौटा, दे अर्जुन भीम वीर।।

इसी प्रकार एक बार तो उन्होंने भरी राज्यसभा में नेहरू की ओर इशारा करते हुए कहा-"क्या आपने हिंदी को राष्ट्रभाषा इसलिए बनाया है, ताकि सोलह करोड़ हिंदीभाषियों को रोज अपशब्द सुनाए जा सकें?" यह सुनकर नेहरू सहित सभा में बैठे सभी लोग सन्न रह गए थे। किस्सा 20 जून 1962 का है। उस दिन दिनकर राज्यसभा में खड़े हुए और हिंदी के अपमान को लेकर बहुत सख्त स्वर में बोले। उन्होंने कहा-

"देश में जब भी हिंदी को लेकर कोई बात होती है, तो देश के नेतागण ही नहीं बल्कि कथित बुद्धिजीवी भी हिंदी वालों को अपशब्द कहे बिना आगे नहीं बढ़ते। पता नहीं इस परिपाटी का आरम्भ किसने किया है, लेकिन मेरा ख्याल है कि इस परिपाटी को प्रेरणा प्रधानमंत्री से मिली है। पता नहीं, तेरह भाषाओं की क्या किस्मत है कि प्रधानमंत्री ने उनके बारे में कभी कुछ नहीं कहा, किन्तु हिंदी के बारे में उन्होंने आज तक कोई अच्छी बात नहीं कही। मैं और मेरा देश पूछना चाहते हैं कि क्या आपने हिंदी को राष्ट्रभाषा इसलिए बनाया था ताकि सोलह करोड़ हिंदीभाषियों को रोज अपशब्द सुनाएं? क्या आपको पता भी है कि इसका दुष्परिणाम कितना भयावह होगा?"

यह सुनकर पूरी सभा सन्न रह गई। ठसाठस भरी सभा में भी गहरा सन्नाटा छा गया। यह मुर्दा-चुप्पी तोड़ते हुए दिनकर ने फिर कहा-"मैं इस सभा और खासकर प्रधानमंत्री नेहरू से कहना चाहता हूं कि हिंदी की निंदा करना बंद किया जाए। हिंदी की निंदा से इस देश की आत्मा को गहरी चोट पहंचती है।"

प्रमुख कृतियाँ

उन्होंने सामाजिक और आर्थिक समानता और शोषण के खिलाफ कविताओं की रचना की। एक प्रगतिवादी और मानववादी कवि के रूप में उन्होंने ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं को ओजस्वी और प्रखर शब्दों का तानाबाना दिया। उनकी महान रचनाओं में रश्मिरथी और परशुराम की प्रतीक्षा शामिल है। उर्वशी को छोड़कर दिनकर की अधिकतर रचनाएँ वीर रस से ओतप्रोत है। भूषण के बाद उन्हें वीर रस का सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है।

ज्ञानपीठ से सम्मानित उनकी रचना 'उर्वशी' की कहानी मानवीय प्रेम, वासना और सम्बन्धों के इर्द-गिर्द घूमती है। 'उर्वशी' स्वर्ग परित्यक्ता एक अप्सरा

की कहानी है। वहीं, 'कुरुक्षेत्र', महाभारत के शान्ति-पर्व का कवितारूप है। यह दूसरे विश्वयुद्ध के बाद लिखी गयी रचना है। वहीं सामधेनी की रचना कवि के सामाजिक चिन्तन के अनुरूप हुई है। संस्कृति के चार अध्याय में दिनकरजी ने कहा कि सांस्कृतिक, भाषाई और क्षेत्रीय विविधताओं के बावजूद भारत एक देश है। क्योंकि सारी विविधताओं के बाद भी, हमारी सोच एक जैसी है।

विस्तृत दिनकर साहित्य सूची नीचे दी गयी है-

1. बारदोली-विजय संदेश (1928),
2. प्रणभंग (1929),
3. रेणुका (1935),
4. हुंकार (1938),
5. रसवन्ती (1939),
6. द्वंद्वगीत (1940),
7. कुरु क्षेत्र (1946),
8. धूप-छाँह (1947),
9. सामधेनी (1947),
10. बापू (1947),
11. इतिहास के आँसू (1951),
12. धूप और धुआँ (1951),
13. मिर्च का मजा (1951),
14. रश्मिरथी (1952),
15. दिल्ली (1954),
16. नीम के पत्ते (1954),
17. नील कुसुम (1955),
18. सूरज का ब्याह (1955),
19. चक्रवाल (1956),
20. कवि-श्री (1957),
21. सीपी और शंख (1957),
22. नये सुभाषित (1957),
23. लोकप्रिय कवि दिनकर (1960),
24. उर्वशी (1961),
25. परशुराम की प्रतीक्षा (1963),

26. आत्मा की आँखें (1964),
27. कोयला और कवित्व (1964),
28. मृत्ति-तिलक (1964) और,
29. दिनकर की सूक्तियाँ (1964),
30. हारे को हरिनाम (1970),
31. संचियता (1973),
32. दिनकर के गीत (1973),
33. रश्मिलोक (1974)
34. उर्वशी तथा अन्यशृंगारिक कविताएँ (1974),
35. मिट्टी की ओर 1946,
36. चित्तौड़ का साका 1948,
37. अर्धनारीश्वर 1952,
38. रेती के फूल 1954,
39. हमारी सांस्कृतिक एकता 1955,
40. भारत की सांस्कृतिक कहानी 1955,
41. संस्कृति के चार अध्याय 1956,
42. उजली आग 1956,
43. देश-विदेश 1957,
44. राष्ट्र-भाषा और राष्ट्रीय एकता 1955,
45. काव्य की भूमिका 1958,
46. पन्त-प्रसाद और मैथिलीशरण 1958,
47. वेणुवन 1958,
48. धर्म, नैतिकता और विज्ञान 1969,
49. वट-पीपल 1961,
50. लोकदेव नेहरू 1965,
51. शुद्ध कविता की खोज 1966,
52. साहित्य-मुखी 1968,
53. राष्ट्रभाषा आंदोलन और गांधीजी 1968,
54. हे राम! 1968,
55. संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ 1970,
56. भारतीय एकता 1971,

57. मेरी यात्राएँ 1971,
58. दिनकर की डायरी 1973,
59. चेतना की शिला 1973,
60. विवाह की मुसीबतें 1973,
61. आधुनिक बोध 1973।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था "दिनकरजी अहिंदीभाषियों के बीच हिन्दी के सभी कवियों में सबसे ज्यादा लोकप्रिय थे और अपनी मातृभाषा से प्रेम करने वालों के प्रतीक थे।" **हरिवंश राय बच्चन** ने कहा था "दिनकरजी को एक नहीं, बल्कि गद्य, पद्य, भाषा और हिन्दी-सेवा के लिये अलग-अलग चार ज्ञानपीठ पुरस्कार दिये जाने चाहिये।" **रामवृक्ष बेनीपुरी** ने कहा था "दिनकरजी ने देश में क्रान्तिकारी आन्दोलन को स्वर दिया।" **नामवर सिंह** ने कहा है "दिनकरजी अपने युग के सचमुच सूर्य थे।" प्रसिद्ध साहित्यकार **राजेन्द्र यादव** ने कहा था कि दिनकरजी की रचनाओं ने उन्हें बहुत प्रेरित किया। प्रसिद्ध रचनाकार काशीनाथ सिंह के अनुसार 'दिनकरजी राष्ट्रवादी और साम्राज्य-विरोधी कवि थे।'

रचनाओं के कुछ अंश

किस भांति उठूँ इतना ऊपर?
मस्तक कैसे छू पाऊँ मैं?
ग्रीवा तक हाथ न जा सकते,
उँगलियाँ न छू सकती ललाट
वामन की पूजा किस प्रकार,
पहुँचे तुम तक मानव विराट?
रे रोक युधिष्ठर को न यहाँ, जाने दे उनको स्वर्ग धीर
पर फिरा हमें गांडीव गदा, लौटा दे अर्जुन भीम वीर-(हिमालय से)
क्षमा शोभती उस भुजंग को, जिसके पास गरल हो,
उसको क्या जो दन्तहीन, विषहीन, विनीत, सरल हो।-(कुरुक्षेत्र से)
पत्थर सी हों मांसपेशियाँ, लौहदंड भुजबल अभय,
नस-नस में हो लहर आग की, तभी जवानी पाती जय।-(रश्मिरथी से)
हटो व्योम के मेघ पंथ से, स्वर्ग लूटने हम जाते हैं,
दूध-दूध ओ वत्स तुम्हारा, दूध खोजने हम जाते हैं।
सच पूछो तो सर में ही, बसती है दीप्ति विनय की,

सन्धि वचन संपूज्य उसी का, जिसमें शक्ति विजय की।
सहनशीलता, क्षमा, दया को तभी पूजता जग है,
बल का दर्प चमकता उसके पीछे जब जगमग है।
दो न्याय अगर तो आधा दो, पर इसमें भी यदि बाधा हो,
तो दे दो केवल पाँच ग्राम, रक्खो अपनी धरती तमाम।-(रश्मिरथी, तृतीय सर्ग, भाग 3)

जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है।-(रश्मिरथी, तृतीय सर्ग, भाग 3)।।

वैराग्य छोड़ बाँहों की विभा संभालो, चट्टानों की छाती से दूध निकालो, है रुकी जहाँ भी धार शिलाएं तोड़ो, पीयूष चन्द्रमाओं का पकड़ निचोड़ो (वीर से)।

सम्मान

दिनकरजी को उनकी रचना कुरुक्षेत्र के लिये काशी नागरी प्रचारिणी सभा, उत्तरप्रदेश सरकार और भारत सरकार से सम्मान मिला। संस्कृति के चार अध्याय के लिये उन्हें 1959 में साहित्य अकादमी से सम्मानित किया गया। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने उन्हें 1959 में पद्म विभूषण से सम्मानित किया। भागलपुर विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलाधिपति और बिहार के राज्यपाल जाकिर हुसैन, जो बाद में भारत के राष्ट्रपति बने, ने उन्हें डॉक्ट्रेट की मानद उपाधि से सम्मानित किया। गुरू महाविद्यालय ने उन्हें विद्या वाचस्पति के लिये चुना। 1968 में राजस्थान विद्यापीठ ने उन्हें साहित्य-चूड़ामणि से सम्मानित किया। वर्ष 1972 में काव्य रचना उर्वशी के लिये उन्हें ज्ञानपीठ से सम्मानित किया गया। 1952 में वे राज्यसभा के लिए चुने गये और लगातार तीन बार राज्यसभा के सदस्य रहे।

मरणोपरान्त सम्मान

30 सितम्बर 1987 को उनकी 13वीं पुण्यतिथि पर तत्कालीन राष्ट्रपति जैल सिंह ने उन्हें श्रद्धांजलि दी। 1999 में भारत सरकार ने उनकी स्मृति में डाक टिकट जारी किया। केंद्रीय सूचना और प्रसारण मन्त्री प्रियरंजन दास मुंशी ने उनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर रामधारी सिंह दिनकर-व्यक्तित्व और कृतित्व पुस्तक का विमोचन किया।

उनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर बिहार के मुख्यमन्त्री नीतीश कुमार ने उनकी भव्य प्रतिमा का अनावरण किया। कालीकट विश्वविद्यालय में भी इस अवसर को दो दिवसीय सेमिनार का आयोजन किया गया।

9

अरबिंदो घोष

अरबिंदो घोष का मूल नाम अरबिंदो घोष है, किंतु उन्हें अरविंद भी कहा जाता है। आधुनिक काल में भारत में अनेक महान् क्रांतिकारी और योगी हुए हैं, अरबिंदो घोष उनमें अद्वितीय हैं। अरविंदो घोष कवि और भारतीय राष्ट्रवादी थे, जिन्होंने आध्यात्मिक विकास के माध्यम से सार्वभौमिक मोक्ष का दर्शन प्रतिपादित किया।

जीवन परिचय

अरबिंदो घोष का जन्म बंगाल के कलकत्ता, वर्तमान कोलकाता, भारत में एक सम्पन्न परिवार में 15 अगस्त, 1872 को हुआ। उनके पिता का नाम डॉक्टर कृष्ण धन घोष और माता का नाम स्वर्णलता देवी था। इनके पिता पश्चिमी सभ्यता में रंगे हुए थे। इसलिए उन्होंने अरबिंदो को दो बड़े भाइयों के साथ दार्जिलिंग के एक अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने के लिए भेज दिया। दो वर्ष बाद सात वर्ष की अवस्था में उनके पिता उन्हें इंग्लैण्ड ले गए। अरविंद को भारतीय एवं यूरोपीय दर्शन और संस्कृति का अच्छा ज्ञान था। यही कारण है कि उन्होंने इन दोनों के समन्वय की दिशा में उल्लेखनीय प्रयास किया। कुछ लोग उन्हें भारत की ऋषि परम्परा (संत परम्परा) की नवीन कड़ी मानते हैं। श्री अरविंद का दावा है कि इस युग में भारत विश्व में एक रचनात्मक भूमिका निभा रहा है तथा भविष्य में भी निभायेगा। उनके दर्शन में जीवन के सभी पहलुओं का समावेश

है। उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर भी अपने विचार व्यक्त किए हैं, यथा संस्कृति, राष्ट्रवाद, राजनीति, समाजवाद आदि साहित्य, विशेषकर काव्य के क्षेत्र में उनकी कृतियां बहुचर्चित हुई हैं।

शिक्षा

अरबिंदो घोष की शिक्षा दार्जिलिंग में ईसाई कॉन्वेंट स्कूल में प्रारम्भ हुई और लड़कपन में ही उन्हें आगे की स्कूली शिक्षा के लिए इंग्लैण्ड भेज दिया गया। इंग्लैण्ड में एक अंग्रेज परिवार में रहने और पढ़ने की व्यवस्था कर तीनों भाइयों को छोड़ उनके पिता वापस आ गये। इंग्लैण्ड में अरबिंदो घोष की भेंट बड़ौदा नरेश से हुई। बड़ौदा नरेश अरबिंदो की योग्यता देखकर बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने अरबिंदो को अपना प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त कर लिया। अतः वह भारत लौट आये। अरबिंदो ने कुछ समय तक तो यह कार्य किया, किन्तु फिर अपनी स्वतंत्र विचारधारा के कारण उन्होंने नौकरी छोड़ दी। वह बड़ौदा कॉलेज में पहले प्रोफेसर बने और फिर बाद में वाइस प्रिंसीपल भी बने। उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया, जहाँ पर वे तीन आधुनिक यूरोपीय भाषाओं के कुशल ज्ञाता बन गए। 1892 में भारत लौटने पर उन्होंने बड़ौदा, वर्तमान वडोदरा और कोलकाता में विभिन्न प्रशासनिक व प्राध्यापकीय पदों पर कार्य किया। बाद में उन्होंने अपनी देशज संस्कृति की ओर ध्यान दिया और पुरातन संस्कृत सहित भारतीय भाषाओं तथा योग का गहन अध्ययन प्रारम्भ कर दिया।

अरबिंदो का दृष्टिकोण

श्री अरविंद के अनुसार वर्तमान मानसिकतायुक्त व्यक्ति, विकास का चरम लक्ष्य नहीं है। विकास का लक्ष्य मानसिकता का अतिक्रमण करके मनुष्य को वहाँ ले जाना है, जो संस्कृति, जन्म-मृत्यु और काल से परे हो। अतिमानसिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए आंतरिक तीव्र अभीप्सा, दैहिक, प्राणिक और मानसिक अंगों का दिव्य के प्रति पूर्ण समर्पण और दिव्य द्वारा उनका रूपान्तरण नितांत आवश्यक है। यही श्री अरविंद के सर्वांगयोग की पूर्व भूमिका है। मानसिक से अतिमानसिक ज्ञान पर एकाएक नहीं पहुँचा जा सकता है। आध्यात्मिक विकास क्रमिक अभिव्यक्ति के तर्क पर आधारित है। अतः आत्मरूपान्तरण के सोपानों को पार करके ही अतिमानस अथवा दिव्यविज्ञान तक पहुँचा जा सकता है। ये सोपान या श्रेणियां इस प्रकार हैं-सामान्य मानसिकता, उच्चतर मानस, प्रदीप्त मानस, सम्बोधि, अधिमानस, अतिमानस।

तत्वमीमांसा

श्री अरविंद आध्यात्मिक अनुभूतियों के स्रोत के रूप में वेदान्त की विभिन्न शाखाओं को मानते हैं। वे परमार्थ तत्व को आध्यात्मिक मानते हैं। उनके अनुसार जड़ तत्व एक दूसरे का निषेध नहीं करते, बल्कि वे एक दूसरे को स्वीकार करते हैं। विश्व ज्ञान प्राप्त करने पर ही बुद्धि एक और अनेक को सम्यक् परिप्रेक्ष्य में देख पाती है। इस ज्ञान की उपलब्धि होने पर दोनों, जड़ और चेतन परस्पर विरोधी नहीं बल्कि एक दूसरे के अभिन्न पहलू के रूप में दिखते हैं। इसी प्रकार शांत निश्चल ब्रह्म के धनात्मक और ऋणात्मक पहलू हैं। ऐसी स्थिति में शांत निश्चल और आत्मस्थित आनन्दमय ब्रह्म जगत् की सत्ता का निराकरण न करके वह नाद या शब्द उत्पन्न करता है जो कि निरन्तर लोगों का सृजन करता है।

श्री अरविंद शंकर की भांति यह स्वीकार करते हैं कि ब्रह्म परम सत्ता है। यह सभी वस्तुओं, गतियों और सत्ताओं का सत्य है। यद्यपि वह सभी में अभिव्यक्त और समान रूप से विद्यमान रहता है, तथापि मनुष्य अपनी सीमित और सापेक्ष बुद्धि के कारण इसके स्वरूप को पूर्णत: ग्रहण नहीं कर पाता। अपने बौद्धिक प्रत्ययों का अतिक्रमण करने के पश्चात् ही हम यह ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं कि ब्रह्म के लिए अवयवी और अवयव के संप्रत्ययों का प्रयोग नहीं किया जा सकता। प्रत्येक वस्तु वह ममय और वह निरवयव या अखंड ब्रह्म में अनुप्राणित है। यह ब्रह्म विशुद्ध सत् और निरपेक्ष है। ज्ञान के बौद्धिक रूपों का अतिक्रमण कर सक्षम परम तादात्म्य के द्वारा ही उसका ज्ञान प्राप्त हो सकता है। वह अनन्त अपरिभाष्य, परिमाण रहित और अरूप होता हुआ भी विचारगम्य और जगत् प्रपंच का अधिष्ठान है। इस प्रकार की सत्ता को मानने का अभिप्राय यह नहीं की गति शक्ति और सम्भूति असत् है। उन्होंने इस द्विविध सत्य को स्वीकार किया कि स्थाणु रूप शिव और गतिशील काली दोनों ही सत्य हैं। शिव और काली, ब्रह्म और शक्ति अभिन्न हैं। सत्ता में शक्ति निरन्तर विद्यमान रहती है। विश्राम और गति शक्ति का स्वभाव है। अत: महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं है कि गति कैसे आरम्भ हुई, अपितु यह कि वह अपने को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त क्यों करती है। श्री अरविंद के अनुसार निश्चल और निस्पंद ब्रह्म अपने आत्मानंद को अनन्त गति और वैचित्य को उन्मुक्त करता है। उसकी शक्ति की सृजनात्मक क्रिया का यही उद्देश्य या ध्येय है। सच्चिदानंद ब्रह्म ने अपने आप को रूप के अंतर्गत प्रक्षिप्त किया है।

श्री अरविंद की इन मान्यताओं के फलस्वरूप जगत् माया नहीं है। वे शंकर के मायावाद को अस्वीकार करते हैं और मानते हैं कि जगत् सर्वांगसत् है। जो जड़ है, वह अचेतन नहीं, किन्तु पूर्वचेतन है। वह चैतन्य की पूर्वावस्था है। विकास की प्रक्रिया में चैतन्य में परिणत होना उसके लिए स्वाभाविक है। इस प्रकार श्री अरविंद ने केवल मायावाद का ही नहीं अपितु जड़ और चेतन के द्वैतावाद और शुद्ध जड़वाद को भी अस्वीकार किया और सिद्ध करने का प्रयास किया की जगत् स्वभावत: आध्यात्मिक है ब्रह्म, जिसका स्वरूप सत्, चित् और आनंद है सर्वत्र विद्यमान है। श्री अरविंद जगत् और जीव दोनों को ही सत् मानते हैं। ये दोनों दो प्रमुख प्रकट तत्व हैं, जिनमें अज्ञेय अभिव्यक्त होता है और जिनके द्वारा उसका ज्ञान प्राप्त होता है। ये माया या मिथ्या नहीं है। श्री अरविंद के अनुसार व्यक्ति का जीवन निरर्थक नहीं है। जगत् में मनुष्य की भूमिका यह है कि वह जगत् में रहता हुआ चैतन्य के विकास का अवसर प्राप्त करता है। मनुष्य पशु प्रवृत्ति और पशु क्रियाओं से जीवन आरम्भ करके अपने ध्येय, दिव्य जीवन और दिव्य अस्तित्व को प्राप्त करता है।

अब प्रश्न उठता है कि यदि जो कुछ है उसमें सत्, चित्, शक्ति तथा आनन्द निरन्तर विद्यमान हैं तो विश्व में दु:ख क्यों है अथवा अशुभ का आविर्भाव किस प्रकार होता है। श्री अरविंद यह मानते हैं कि दु:ख तथा अशुभ विकास क्रम की एक स्थिति विशेष को प्रकट करते हैं। मनुष्य के सुख-दुख उसके अहंकार के द्योतक हैं। विकास क्रम अप्रकट में रूप से कार्यरत दिव्य चित् शक्ति जब मनुष्य का विकास कर देगी अथवा ईश्वर की अग्नि जब पृथ्वी के कामनांकुरों को जला देगी तब वह सुख-दु:ख के मूल में अंतर्निहित अप्रकट तत्व और उसके आनन्द रस का नए रूप में अनुभव करेगा। श्री अरविंद की इस प्रकार की व्याख्या का कारण उनकी यह मान्यता है कि समस्त अनुभवों और रूपों के मूल में आनंद विद्यमान है। सत् की चित् शक्ति विकास क्रम में अपना आनंद ही वस्तुत: खोजती रहती है। सत्ता के आनन्द का वही अर्थ नहीं है, जिस अर्थ में कि हम सुख अथवा हर्ष का साधारणतया प्रयोग करते हैं। सत्ता आनंद का सार्वभौमिक, असीम और स्वयंभू है। सुख हर्ष आदि की भांति आनंद विशेष कारणों पर आधारित नहीं है। जब मनुष्य अपने अन्दर निहित इस अप्रकट आनंद को विकास क्रम में प्राप्त कर लेगा तभी यह उपनिषद वाक्य सार्थक होगा कि आनंद से ही सभी जीवन उत्पन्न होते हैं, आनंद में ही रहते हैं और अन्तत: आनंद में ही विलीन होते हैं।

ज्ञानमीमांसा

अरविंद के अनुसार पूर्णज्ञान अतिमानसिक ज्ञान है। परन्तु यह ज्ञान अतीन्द्रिय, अतिमानसिक और अतिबौद्धिक होते हुए भी ऐन्द्रिय, मानसिक और बौद्धिक ज्ञान का निराकरण नहीं करता है। वे मानते हैं कि परम सत् का ज्ञान बौद्धिक उपकरणों द्वारा सम्भव नहीं है–नैषातर्केण मतिरापणीया। इस संदर्भ में उनकी औपनिषदिक से सहमति है। श्री अरविंद सम्यक् ज्ञान को सम्बोधिमूलक ज्ञान कहते हैं। इस ज्ञान का आधार है ज्ञाता और ज्ञेय के मध्य सचेतन तादात्म्य। यह सार्वभौमिक आत्म अस्तित्व की वह स्थिति है, जिसमें ज्ञाता और ज्ञेय के ज्ञान के द्वारा तादात्म्य स्थापित हो जाता है। बुद्धि स्वत: सम्बोधिमूलक ज्ञान में परिवर्तित हो जाती है। ज्ञान की इस उच्चतम सम्भाव्य अवस्था के अंतर्गत ही मानस अतिमानस में अपनी परिपूर्णता को प्राप्त करता है।

श्री अरविंद की ज्ञानमीमांसा में मानव (माइण्ड) अभिमानस (ओवर माइण्ड) और अतिमानस (सुपर माइण्ड) के सम्प्रत्ययों का विशेष महत्त्व है। जहाँ अन्य दार्शनिक केवल मानस को मानते हैं, वहाँ ये मानस को विकासशील मानते हुए उसके ऊपर अधिमानस और अतिमानस को भी मानते हैं। यद्यपि अधिमानस और अतिमानस तत्व हैं तथापि उनको हम उनके ज्ञान या सम्प्रत्यय से पृथक् नहीं कर सकते। वे तत्व और ज्ञान–व्यक्ति दोनों हैं। वास्तव में मानस स्तर पर ज्ञाता और ज्ञेय का जो भेद है, वह इन स्तरों पर नहीं है। इस कारण अधिमानस और अतिमानस को मानस के सादृश्य से नहीं जाना जा सकता है। उनको जानने के लिए मानस की सीमाओं का अतिक्रमण कर ज्ञान की उच्चतर भूमिका पर पहुँचना होगा। इसके लिए प्रतिभा ज्ञान, अपरोक्षानुभव, रहस्यानुभूति आदि का ही आश्रय लिया जा सकता है। उपनिषदों के महावाक्य तथा तत्वमसि आदि ऐसे ही ज्ञान पर आधारित हैं। अत: जब तक व्यक्ति मानसिक स्तर से ऊपर उठकर अतिमानस स्तर पर नहीं पहुँच जाता, तब तक सम्बोधि उसे सत्य का सम्यक् ज्ञान प्रदान करने में सक्षम नहीं हो सकती। पूर्ण ज्ञान अतिमानस ज्ञान है और इसकी प्राप्ति मनुष्य के पूर्ण रूपातन्तरण के पश्चात् ही होती है। इसके लिए योग साधना अपेक्षित है।

रूपान्तरण की स्थितियाँ

रूपान्तरण की तीन प्रमुख स्थितियां हैं–चौत्यीकरण, आध्यात्मीकरण और अतिमानसीकरण। पूर्णरूपान्तर के लिए सभी अंगों की तत्परता एवं अतिमानसिक

प्रकाश का अवरोहण आवश्यक है। इसके लिए चौत्यीकरण आवश्यक है। हृदय के अंतर्गत विद्यमान दिव्य प्रकाश को श्री अरविंद 'चैत्यपुरुष' की संज्ञा देते हैं। आध्यात्मिक रूपान्तरण के लिए चैत्यपुरुष की अभिव्यक्ति आवश्यक है। चैत्यपुरुष के विकास के फलस्वरूप उच्च चेतना हमारे अंदर प्रवेश करके हमारे सम्पूर्ण अस्तित्व का रूपान्तरण कर देगी। अतिमानस ब्रह्म का बृहत् आत्म विस्तार है। अतिमानस और मानस में अन्तर होते हुए भी दोनों संबंधित हैं। मानस, अतिमानस से ही आविर्भूत हुआ है। परन्तु बीज जिस अतिमानस को प्राप्त करता है, उसमें और सर्वोच्च अतिमानस में, जो सर्वज्ञाता और सर्वशक्तिमान ईश्वर का यप है, विभेद है।

समाज दर्शन

समाज दर्शन समाज के अध्ययन द्वारा उसमें अंतर्निहित दिव्यता को समझने और पहचानने का प्रयास है। समाज दार्शनिकों ने प्रायः अपना ध्यान बाह्य तथ्यों, यथा नियमों, संस्थाओं, परम्पराओं, राजनीति और आर्थिक परिस्थितियों आदि पर ही केन्द्रित किया है। उन्होंने उन प्रमुख मनोवैज्ञानिक तथ्यों की अवहेलना की है, जो मनुष्य जैसे भावनात्मक और विचारशील प्राणी के जीवन में नितांत महत्त्वपूर्ण हैं। मनुष्य और समाज का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अत्यन्त जटिल है। लामप्रेक्त के अनुसार समाज के विकास की मनोवैज्ञानिक स्थितियां ये हैं–प्रतीकात्मक, प्रारुपिक, रूढ़िपरक तथा व्यक्तिपरक। समाज का विकास इन स्थितियों के माध्यम से इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक वृत का रूप धारण कर लेता है। इस वृत से होकर ही राष्ट्र और सभ्यता को गुजरना पड़ता है। परन्तु श्री अरविंद के अनुसार विकासक्रम की इस प्रकार की निश्चित व्याख्या और वर्गीकरण वस्तुतः प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। प्रकृति की वक्र गति को सीधी रेखा की भांति नहीं समझाया जा सकता है। लामप्रेक्त का सिद्धांत क्रमबद्ध स्थितियों के निहितार्थ एवं उनके अनिवार्य अनुक्रम के ध्येय के विषय में कुछ भी सूचित नहीं करता। परन्तु श्री अरविंद के अनुसार यदि लामप्रेक्त द्वारा विवेचित समाज के विकास की स्थितियों के निहितार्थों का अनुशीलन किया जाए, तो वे ऐतिहासिक विकास के सूक्ष्मतम रहस्यों एवं तथ्यों की ओर संकेत करती है। मानव समाज की आरम्भिक स्थितियों के अध्ययन और अनुशीलन उस मानसिकता को प्रकट करते हैं जो उसकी परम्पराओं, विचारों और संस्थाओं में अप्रकट रूप में विद्यमान रहती हैं।

प्रारुपिक समाज की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसने उन उदात्त सामाजिक आदर्शों को जन्म दिया है, जो निरन्तर ही मनुष्य को प्रभावित और अनुप्राणित करते रहते हैं। प्रारुपिक स्थिति के पश्चात् समाज की रूढ़िपरक स्थिति आती है। इसमें विचार और आदर्शों का स्थान बाह्य रूप यथा वेश-भूषा, रहन-सहन आदि ग्रहण कर लेते हैं। परन्तु रूढ़ि और सत्य का भेद असह्य हो जाने पर मनुष्य की बुद्धि मुखर हो जाती है। ऐसी स्थिति में वह रूढ़ियों, प्रतीकों और प्रारूपों का विरोध करती है। फलतः मनुष्य अपने खोये हुए नैतिक बोध और भावात्मक इच्छा को पुनः खोजने का प्रयास करता है। यह समाज की व्यष्टिपरक स्थिति है। यह विद्रोह उन्नति, स्वतंत्रता और विश्लेषणात्मक बुद्धि तथा भौतिक विज्ञानों के विकास का युग है। आत्म-विकास, अस्तित्व के नियम और शक्ति को जानकर उन्हें कार्यरूप में परिणत करना ही वस्तुतः व्यक्ति के जीवन का प्रमुख ध्येय है। परन्तु पाश्चात्य मानवता के ऐतिहासिक युग में आत्मा को उसके उचित अर्थ में नहीं ग्रहण किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि जीवन तमाम पूर्वग्रहों से ग्रस्त होकर युद्ध से आक्रान्त हो उठा। अतः हमारे लिये ये नितांत वांछनीय है कि हम वास्तविक आत्मविषमतावाद को झूठे आत्मनिष्ठावाद से अलग करें और पहचानें। सच्चा आत्मनिष्ठावाद मनुष्य की पृथक् सत्ता का अनुमोदन करने के साथ साथ दूसरे व्यक्तियों की पृथक् सत्ता और स्वतंत्रता का अनुमोदन करता है। समाज जब अतिमानसिक ज्योति से प्रकाशित होगा तभी मानवता उस दिव्यत्व को प्राप्त करेगी, जो उसकी अमर धरोहर है। इसी प्राप्ति के लिए हमें योग को अपनाना होगा। योग आत्मा की खोज का सचेतन माध्यम है।

सिद्धान्त

अरबिंदो घोष के सार्वभौमिक मोक्ष के सिद्धान्त के अनुसार, ब्रह्म के साथ एकाकार होने के दोमुखी रास्ते हैं-बोधत्व ऊपर से आता है (प्रमेय), जबकि आध्यात्मिक मस्तिष्क यौगिक प्रकाश के माध्यम से नीचे से ऊपर पहुँचने की कोशिश करता है (अप्रमेय)। जब ये दोनों शक्तियाँ एक-दूसरे में मिलती हैं, तब संशय से भरे व्यक्ति का सृजन होता है (संश्लेषण)। यह यौगिक प्रकाश, तर्क व अंतर्बोध से परे अंततः व्यक्ति को वैयक्तिकता के बंधन से मुक्त करता है। इस प्रकार, अरबिंदो ने न केवल व्यक्ति के लिए, बल्कि समूची मानवता के लिए मुक्ति की तार्किक पद्धति का सृजन किया।

साहित्यिक कृतियाँ

श्री अरविंद के दर्शन को भी वेदान्त के परिप्रेक्ष्य में ही समझा जा सकता है। स्वानुभूति के अतिरिक्त वेद, उपनिषद और पुराण वस्तुतः उनके दर्शन के स्रोत हैं। उनका दर्शन सर्वस्वीकृति का वर्णन है। उनके अनुसार विश्वातीत सत्य की स्वीकृति में ही विश्व और व्यक्ति की सत्यता भी अंतर्निहित है। वे दार्शनिक और विचारक होने के साथ-साथ योगी भी हैं। उनका दर्शन और योग जीवन की दिव्यता पर बल देता है। अरबिंदो घोष की वृहद और जटिल साहित्यिक कृतियों में दार्शनिक चिंतन, कविता, नाटक और अन्य लेख सम्मिलित हैं। उनकी कृतियाँ हैं–

- एस्सेज ऑन गीता (1928),
- लाइफ डिवाइन (1940),
- कलेक्टेड पोयम्स एण्ड प्लेज (1942),
- सिंथेसिस ऑफ योगा (1948),
- ह्यूमन साइकिल (1949),
- आईडियल ऑफ ह्यूमन यूनिटी (1949),
- ए लीजेंड एण्ड ए सिंबल (1950),
- ऑन द वेदा (1956),
- फाउन्डेशन ऑफ इंडियन कल्चर।

राजनीतिक गतिविधियाँ

अरबिंदो के लिए 1902 से 1910 के वर्ष हलचल भरे थे, क्योंकि उन्होंने ब्रिटिश शासन से भारत को मुक्त कराने का बीड़ा उठाया था। बड़ौदा कॉलेज की नौकरी छोड़कर वह कोलकाता चले गए और कोलकाता के 'नेशनल कॉलेज' के प्रिंसीपल बने। इस समय तक उन्होंने 'सादा जीवन और उच्च विचार' जीवन अपना लिया। उन पर रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद के साहित्य का बहुत गहन प्रभाव हुआ। सन् 1905 में लॉर्ड कर्जन ने पूर्वी बंगाल और पश्चिमी बंगाल के रूप में बंगाल के दो टुकड़े कर दिए ताकि हिन्दू और मुसलमानों में फूट पड़ सके। इस बंग-भंग के कारण बंगाल में जन जन में असंतोष फैल गया।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर और अरबिंदो घोष ने इस जन आंदोलन का नेतृत्व किया। इस आंदोलन के विषय में लोकमान्य तिलक ने कहा-बंगाल पर किया गया अंग्रेजों का प्रहार सम्पूर्ण राष्ट्र पर प्रहार है। अरबिंदो घोष ने राष्ट्रीयता की भावना

जाग्रत करने तथा अंग्रेजों का विरोध प्रदर्शित करने के लिए पत्र-पत्रिकाओं में विचारोत्तेजक और प्रभावशाली लेख लिखे। उनके लेखों से जन जन में जागृति आ गयी। ब्रिटिश सरकार उनके इस क्रिया कलापों से चिंतित हो गई। सरकार ने "अलीपुर बम कांड" के अंतर्गत उन्हें जेल भेज दिया। जेल में उन्हें योग पर चिंतन करने का समय मिला। उन्होंने सन् 1907 में राष्ट्रीयता के साथ भारत को "भारत माता" के रूप में वर्णित और प्रतिष्ठित किया। उन्होंने बंगाल में "क्रांतिकारी दल" का संगठन किया और उसका प्रचार और प्रसार करने को अनेक शाखाएं खोली और वे स्वयं उसके प्रधान संचालक बने रहे। खुदीराम बोस और कनाईलाल दत्त, यह क्रांतिकारी उनके संगठन के ही क्रांतिकारी थे। इन गतिविधियों के कारण अरबिंदो घोष अधिक दिनों तक सरकार की नजरों से छिपे नहीं रह पाये और उन्हें फिर से जेल जाना पड़ा। वह अपनी राजनीतिक गतिविधियों और क्रान्तिकारी साहित्यिक प्रयासों के लिए 1908 में बन्दी बना लिए गए। 1906 से 1909 तक सिर्फ तीन वर्ष प्रत्यक्ष राजनीति में रहे। इसी में देश भर के लोगों के प्रिय बन गए। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस लिखते हैं-जब मैं 1913 में कलकत्ता आया, अरबिंदो तब तक किंवदंती पुरुष हो चुके थे। जिस आनंद तथा उत्साह के साथ लोग उनकी चर्चा करते शायद ही किसी की वैसे करते। दो वर्ष के बाद ब्रिटिश भारत से भागकर उन्होंने दक्षिण-पूर्वी भारत में फ्राँसीसी उपनिवेश पाण्डिचेरी में शरण ली, जहाँ उन्होंने अपना शेष जीवन पूरी तरह से अपने दर्शन को विकसित करने में लगा दिया। उन्होंने वहाँ पर आध्यात्मिक विकास के अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में एक आश्रम की स्थापना की, जिसकी ओर विश्व भर के छात्र आकर्षित हुए।

अरबिंदो घोष ने बंगाल में "क्रांतिकारी दल" का संगठन किया और उसका प्रचार और प्रसार करने को अनेक शाखाएं खोली और वे स्वयं उसके प्रधान संचालक बने रहे। खुदीराम बोस और कनाईलाल दत्त, उनके संगठन के ही क्रांतिकारी थे।

भारत के स्वतन्त्र होते ही राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का आकलन करते हुए श्री अरबिंदो ने भविष्यवाणी की थी-भारत एक बार फिर एशिया का नेता होकर समस्त भूमंडल को एकात्मा की मूलभूतशृंखला में आबद्ध करने का महान् कार्य सम्पन्न करेगा। भारत की आध्यात्मिकता यूरोप और अमेरिका में प्रवेश कर रही है। इसकी गति थमेगी नहीं, दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जाएगी। वर्तमान विपदाओं के बीच लोगों की आँखें आशा के साथ अधिकाधिक

उसकी ओर मुड रही हैं और लोग केवल शास्त्रों का ही नहीं, बल्कि उसकी आन्तरिक और आध्यत्मिक साधना का अधिकाधिक आश्रय ग्रहण कर रहे हैं।

मृत्यु

पांडिचेरी आने के बाद वे सांसारिक कार्यों से अलग होकर आत्मा की खोज में लग गए। पांडिचेरी आने के बाद अरबिंदो घोष अंत तक योगाभ्यास करते रहे और उन्हें परमात्मा से साक्षात्कार की अनुभूति हुई। उनके आध्यात्मिक अनुभवों से असंख्य लोग प्रभावित हुए। उनका दृढ़ विश्वास था कि संसार के दु:ख का निवारण केवल आत्मा के विकास से ही हो सकता है जिसकी प्राप्ति केवल योग द्वारा ही संभव है। वे मानते थे कि योग से ही नई चेतना आ सकती है। अरबिंदो घोष की मृत्यु 5 दिसम्बर, 1950 में पाण्डिचेरी में हुई थी।

मुख्य रचनाएँएस्सेज ऑन गीता (1928), द लाइफ डिवाइन (1940), कलेक्टेड पोयम्स एण्ड प्लेज (1942), द सिंथेसिस ऑफ योगा (1948), द ह्यूमन साइकिल (1949), द आईडियल ऑफ ह्यूमन यूनिटी (1949), ए लीजेंड एण्ड ए सिंबल (1950) और ऑन द वेदा (1956)।

10

मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्त खड़ी बोली के प्रथम महत्त्वपूर्ण कवि थे। महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से आपने खड़ी बोली को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया और अपनी कविता के द्वारा खड़ी बोली को एक काव्य-भाषा के रूप में निर्मित करने में अथक प्रयास किया। इस तरह ब्रजभाषा जैसी समृद्ध काव्य भाषा को छोड़कर समय और संदर्भों के अनुकूल होने के कारण नये कवियों ने इसे ही अपनी काव्य-अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। हिन्दी कविता के इतिहास में गुप्त जी का यह सबसे बड़ा योगदान है।

जीवन परिचय

मैथिलीशरण गुप्त जी का जन्म 3 अगस्त 1886 चिरगाँव, झाँसी, उत्तर प्रदेश में हुआ था। संभ्रांत वैश्य परिवार में जन्मे मैथिलीशरण गुप्त के पिता का नाम 'सेठ रामचरण' और माता का नाम 'श्रीमती काशीबाई' था। पिता रामचरण एक निष्ठावान् प्रसिद्ध राम भक्त थे। इनके पिता 'कनकलता' उप नाम से कविता किया करते थे और राम के विष्णुत्व में अटल आस्था रखते थे। गुप्त जी को कवित्व प्रतिभा और राम भक्ति पैतृक देन में मिली थी। वे बाल्यकाल में ही काव्य रचना करने लगे। पिता ने इनके एक छंद को पढ़कर आशीर्वाद दिया कि "तू आगे चलकर हमसे हजार गुनी अच्छी कविता करेगा" और यह आशीर्वाद अक्षरशः सत्य हुआ। मुंशी अजमेरी के साहचर्य ने उनके काव्य-संस्कारों को

विकसित किया। उनके व्यक्तित्व में प्राचीन संस्कारों तथा आधुनिक विचारधारा दोनों का समन्वय था। मैथिलीशरण गुप्त जी को साहित्य जगत् में 'दद्दा' नाम से सम्बोधित किया जाता था।

शिक्षा

मैथिलीशरण गुप्त की प्रारम्भिक शिक्षा चिरगाँव, झाँसी के राजकीय विद्यालय में हुई। प्रारंभिक शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त गुप्त जी झाँसी के मेकडॉनल हाईस्कूल में अंग्रेजी पढ़ने के लिए भेजे गए, पर वहाँ इनका मन न लगा और दो वर्ष पश्चात् ही घर पर इनकी शिक्षा का प्रबंध किया, लेकिन पढ़ने की अपेक्षा इन्हें चकई फिराना और पतंग उड़ाना अधिक पसंद था, फिर भी इन्होंने घर पर ही संस्कृत, हिन्दी तथा बांग्ला साहित्य का व्यापक अध्ययन किया। इन्हें 'आल्हा' पढ़ने में भी बहुत आनंद आता था।

काव्य प्रतिभा

इसी बीच गुप्तजी मुंशी अजमेरी के संपर्क में आये और उनके प्रभाव से इनकी काव्य-प्रतिभा को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। अत: अब ये दोहे, छप्पयों में काव्य रचना करने लगे, जो कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) में प्रकाशित होने वाले 'वैश्योपकारक' पत्र में प्रकाशित हुई। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जब झाँसी के रेलवे ऑफिस में चीफ क्लर्क थे, तब गुप्तजी अपने बड़े भाई के साथ उनसे मिलने गए और कालांतर में उन्हीं की छत्रछाया में मैथिलीशरण जी की काव्य प्रतिभा पल्लवित व पुष्पित हुई। वे द्विवेदी जी को अपना काव्य गुरु मानते थे और उन्हीं के बताये मार्ग पर चलते रहे तथा जीवन के अंत तक साहित्य साधना में रत रहे। उन्होंने राष्ट्रीय आंदलनों में भी भाग लिया और जेल यात्रा भी की।

लोकसंग्रही कवि

मैथिलीशरण गुप्त जी स्वभाव से ही लोकसंग्रही कवि थे और अपने युग की समस्याओं के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील रहे। उनका काव्य एक ओर वैष्णव भावना से परिपोषित था, तो साथ ही जागरण व सुधार युग की राष्ट्रीय नैतिक चेतना से अनुप्राणित भी था। लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक, विपिनचंद्र पाल, गणेश शंकर विद्यार्थी और मदनमोहन मालवीय उनके आदर्श रहे। महात्मा गांधी के भारतीय राजनीतिक जीवन में आने से पूर्व ही गुप्त का युवा मन

गरम दल और तत्कालीन क्रान्तिकारी विचारधारा से प्रभावित हो चुका था। 'अनघ' से पूर्व की रचनाओं में, विशेषकर जयद्रथ वध और भारत भारती में कवि का क्रान्तिकारी स्वर सुनाई पड़ता है। बाद में महात्मा गांधी, राजेन्द्र प्रसाद, जवाहर लाल नेह: और विनोबा भावे के सम्पर्क में आने के कारण वह गांधीवाद के व्यावहारिक पक्ष और सुधारवादी आंदोलनों के समर्थक बने। 1936 में गांधी ने ही उन्हें मैथिली काव्य-मान ग्रन्थ भेंट करते हुए राष्ट्रकवि का सम्बोधन दिया। महावीर प्रसाद द्विवेदी के संसर्ग से गुप्तजी की काव्य-कला में निखार आया और उनकी रचनाएँ 'सरस्वती' में निरन्तर प्रकाशित होती रहीं। 1909 में उनका पहला काव्य जयद्रथ-वध आया। जयद्रथ-वध की लोकप्रियता ने उन्हें लेखन और प्रकाशन की प्रेरणा दी। 59 वर्षों में गुप्त जी ने गद्य, पद्य, नाटक, मौलिक तथा अनूदित सब मिलाकर, हिन्दी को लगभग 74 रचनाएँ प्रदान की हैं। जिनमें दो महाकाव्य, 20 खंड काव्य, 17 गीतिकाव्य, चार नाटक और गीतिनाट्य हैं।

देश प्रेम

काव्य के क्षेत्र में अपनी लेखनी से संपूर्ण देश में राष्ट्रभक्ति की भावना भर दी थी। राष्ट्रप्रेम की इस अजस्र धारा का प्रवाह बुंदेलखंड क्षेत्र के चिरगांव से कविता के माध्यम से हो रहा था। बाद में इस राष्ट्रप्रेम की इस धारा को देश भर में प्रवाहित किया था, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने।

मैथिलीशरण गुप्त

जो भरा नहीं है भावों से जिसमें बहती रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।

पिताजी के आशीर्वाद से वह राष्ट्रकवि के सोपान तक पदासीन हुए। महात्मा गांधी ने उन्हें राष्ट्रकवि कहे जाने का गौरव प्रदान किया। भारत सरकार ने उनकी सेवाओं को देखते हुए उन्हें दो बार राज्यसभा की सदस्यता प्रदान की। हिन्दी में मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-साधना सदैव स्मरणीय रहेगी। बुंदेलखंड में जन्म लेने के कारण गुप्त जी बोलचाल में बुंदेलखंडी भाषा का ही प्रयोग करते थे। धोती और बंडी पहनकर माथे पर तिलक लगाकर संत के रूप में अपनी हवेली में बैठे रहा करते थे। उन्होंने अपनी साहित्यिक साधना से हिन्दी को समृद्ध किया। मैथिलीशरण गुप्त के जीवन में राष्ट्रीयता के भाव कूट-कूट कर भर गए थे। इसी कारण उनकी सभी रचनाएं राष्ट्रीय विचारधारा से ओत-प्रोत है। वे

भारतीय संस्कृति एवं इतिहास के परम भक्त थे। परन्तु अंधविश्वासों और थोथे आदर्शों में उनका विश्वास नहीं था। वे भारतीय संस्कृति की नवीनतम रूप की कामना करते थे।

महाकाव्य

मैथिलीशरण गुप्त को काव्य क्षेत्र का शिरोमणि कहा जाता है। मैथिलीशरण जी की प्रसिद्धि का मूलाधार भारत-भारती है। भारत-भारती उन दिनों राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का घोषणापत्र बन गई थी। साकेत और जयभारत, दोनों महाकाव्य हैं। साकेत रामकथा पर आधारित है, किन्तु इसके केन्द्र में लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला है। साकेत में कवि ने उर्मिला और लक्ष्मण के दाम्पत्य जीवन के हृदयस्पर्शी प्रसंग तथा उर्मिला की विरह दशा का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है, साथ ही कैकेयी के पश्चात्ताप को दर्शाकर उसके चरित्र का मनोवैज्ञानिक एवं उज्ज्वल पक्ष प्रस्तुत किया है। यशोधरा में गौतम बुद्ध की मानिनी पत्नी यशोधरा केन्द्र में है। यशोधरा की मन:स्थितियों का मार्मिक अंकन इस काव्य में हुआ है। विष्णु प्रिया में चैतन्य महाप्रभु की पत्नी केन्द्र में है। वस्तुत: गुप्त जी ने रबीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा बांग्ला भाषा में रचित 'काव्येर उपेक्षित नार्या' शीर्षक लेख से प्रेरणा प्राप्त कर अपने प्रबन्ध काव्यों में उपेक्षित, किन्तु महिमामयी नारियों की व्यथा-कथा को चित्रित किया और साथ ही उसमें आधुनिक चेतना के आयाम भी जोड़े।

विविध धर्मों, सम्प्रदायों, मत-मतांतरों और विभिन्न संस्कृतियों के प्रति सहिष्णुता व समन्वय की भावना गुप्त जी के काव्य का वैशिष्ट्य है। पंचवटी काव्य में सहज वन्य-जीवन के प्रति गहरा अनुराग और प्रकृति के मनोहारी चित्र हैं, तो नहुष पौराणिक कथा के आधार के माध्यम से कर्म और आशा का संदेश है। झंकार वैष्णव भावना से ओतप्रोत गीतिकाव्य है तो गुरुकुल और काबा-कर्बला में कवि के उदार धर्म-दर्शन का प्रमाण मिलता है। खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारण और विकास में गुप्त जी का अन्यतम योगदान रहा।

भारत-भारती

'भारत-भारती', मैथिलीशरण गुप्तजी द्वारा स्वदेश प्रेम को दर्शाते हुए वर्तमान और भावी दुर्दशा से उबरने के लिए समाधान खोजने का एक सफल प्रयोग है। भारतवर्ष के संक्षिप्त दर्शन की काव्यात्मक प्रस्तुति 'भारत-भारती'

निश्चित रूप से किसी शोध कार्य से कम नहीं है। गुप्तजी की सृजनता की दक्षता का परिचय देने वाली यह पुस्तक कई सामाजिक आयामों पर विचार करने को विवश करती है। यह सामग्री तीन भागों में बाँटी गयी है।

साकेत का आवरण पृष्ठ

अतीत-खंड

भारत-भारती

यह भाग भारतवर्ष के इतिहास पर गर्व करने को पूर्णत: विवश करता है। उस समय के दर्शन, धर्म-काल, प्राकृतिक संपदा, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, सामाजिक-व्यवस्था जैसे-तत्त्वों को संक्षिप्त रूप से स्मरण करवाया गया है। अतिशयोक्ति से दूर इसकी सामग्री संलग्न दी गयी टीका-टिप्पणियों के प्रमाण के कारण सरलता से ग्राह्य हो जाती हैं। मेगस्थनीज से लेकर आर. सी. दत्त. तक के कथनों को प्रासंगिक ढंग से पाठकों के समक्ष रखना एक कुशल नियोजन का सूचक है। निरपेक्षता का ध्यान रखते हुए निन्दा और प्रशंसा के प्रदर्शन हुए है, जैसे-मुगल काल के कुछ क्रूर शासकों की निंदा हुई है तो अकबर जैसे मुगल शासक का बखान भी हुआ है। अंग्रेजों की उनके विष्कार और आधुनिकीकरण के प्रचार के कारण प्रशंसा भी हुई है।

भारतवर्ष के दर्शन पर वे कहते हैं-
पाये प्रथम जिनसे जगत् ने दार्शनिक संवाद हैं-
गौतम, कपिल, जैमिनी, पतंजली, व्यास और कणाद है।
नीति पर उनके द्विपद ऐसे हैं-
सामान्य नीति समेत ऐसे राजनीतिक ग्रन्थ हैं-
संसार के हित जो प्रथम पुण्याचरण के पंथ हैं।
सूत्रग्रंथ के सन्दर्भ में ऋषियों के विद्वत्ता पर वे लिखते हैं-
उन ऋषि-गणों ने सूक्ष्मता से काम कितना है लिया,
आश्चर्य है, घट में उन्होंने सिन्धु को है भर दिया।

वर्तमान-खंड

दारिद्र्य, नैतिक पतन, अव्यवस्था और आपसी भेदभाव से जूझते उस समय के देश की दुर्दशा को दर्शाते हुए, सामाजिक नूतनता की माँग रखी गयी है।

अपनी हुई आत्म-विस्मृति पर वे कहते हैं-

हम आज क्या से क्या हुए, भूले हुए हैं हम इसे,
है ध्यान अपने मान का, हममें बताओ अब किसे!
पूर्वज हमारे कौन थे, हमको नहीं यह ज्ञान भी,
है भार उनके नाम पर दो अंजली जल-दान भी।

नैतिक और धार्मिक पतन के लिए गुप्तजी ने उपदेशकों, संत-महंतों और ब्राह्मणों की निष्क्रियता और मिथ्या-व्यवहार को दोषी मान शब्द बाण चलाये हैं। इस तरह कविवर की लेखनी सामाजिक दुर्दशा के मुख्य कारणों को खोज उनके सुधार की माँग करती है। हमारे सामाजिक उत्तरदायित्व की निष्क्रियता को उजागर करते हुए भी 'वर्तमान खंड' आशा की गाँठ को बाँधे रखती है।

भविष्यत्-खंड

अपने ज्ञान, विवेक और विचारों की सीमा को छूते हुए राष्ट्रकवि ने समस्या समाधान के हल खोजने और लोगों से उसके के लिए आवाहन करने का भरसक प्रयास किया है।

आर्य वंशज हिन्दुओं को देश पुनर्स्थापना के लिए प्रेरित करते हुए वे कहते हैं-

हम हिन्दुओं के सामने आदर्श जैसे प्राप्त हैं-
संसार में किस जाति को, किस ठौर वैसे प्राप्त हैं,
भव-सिन्धु में निज पूर्वजों के रीति से ही हम तरें,
यदि हो सकें वैसे न हम तो अनुकरण तो भी करें।

पुस्तक की अंत की दो रचनाएं 'शुभकामना' और 'विनय' कविवर की देशभक्ति की परिचायक है। तन में देश सद्भावना की ऊर्जा का संचार करने वाली यह दो रचनाएं किसी प्रार्थना से कम नहीं लगती।

वह अमर लेखनी ईश्वर से प्रार्थना करती है-

इस देश को हे दीनबन्धो। आप फिर अपनाइए,
भगवान्! भारतवर्ष को फिर पुण्य-भूमि बनाइये,
जड़-तुल्य जीवन आज इसका विघ्न-बाधा पूर्ण है,
हेरम्ब! अब अवलंब देकर विघ्नहर कहलाइए।

राष्ट्रकवि

अपने साहित्यिक गुरु महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से गुप्त जी ने 'भारत-भारती' की रचना की। 'भारत-भारती' के प्रकाशन से ही गुप्त जी प्रकाश में आये। उसी समय से आपको 'राष्ट्रकवि' के नाम से अभिनंदित किया गया। उनकी साहित्य साधना सन् 1921 से सन् 1964 तक निरंतर आगे बढ़ती रही। गुप्त जी युग-प्रतिनिधि राष्ट्रीय कवि थे। इस अर्ध-शताब्दी की समस्त सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक हलचलों का प्रतिनिधित्व इनकी रचनाओं में मिल जाता है। इनके काव्य में राष्ट्र की वाणी मुखर हो उठी है। देश के समक्ष सबसे प्रमुख समस्या दासता से मुक्ति थी। गुप्त जी ने 'भारत-भारती' तथा अपनी अन्य रचनाओं के माध्यम से इस दिशा में प्रेरणा प्रदान की। इन्होंने अतीत गौरव का भाव जगाकर वर्तमान को सुधारने की प्रेरणा दी। अपनी अभिलाषा अभिव्यक्त करते हुए वे कहते हैं-

"मानव-भवन में आर्यजन, जिसकी उतारें आरती।
भगवान् भारतवर्ष में, गूंजे हमारी भारती।"

इस युग की प्रमुख समस्या हिन्दू-मुस्लिम एकता थी। गुप्त जी ने अपनी अनेक रचनाओं में दोनों की एकता पर बल दिया। 'काबा और कर्बला' में उन्होंने मुसलमानों की सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयास किया है। इस प्रकार गुप्त जी ने समस्त समस्याओं का राष्ट्रीय दृष्टि से समाधान प्रस्तुत किया है।

काव्य सौन्दर्य

मैथिलीशरण गुप्त अपनी भाव रश्मियों से हिन्दी साहित्य को प्रकाशित करने वाले युग कवि थे। 40 वर्ष तक निरंतर इनकी रचनाओं में युग स्वर गूंजता रहा। इन्होंने गौरवपूर्ण अतीत को प्रस्तुत करने के साथ-साथ भविष्य का भी भव्य रूप प्रस्तुत किया-

"मैं अतीत नहीं भविष्यत् भी हूँ आज तुम्हारा।"

गुप्त जी मानवतावाद के पोषक और समर्थक थे। इनकी भगवत भावना महान् थी। इनके काव्य में निर्गुण नारायण ही पृथ्वी को स्वर्ग बनाने के लिए भूतल पर आते हैं।

'भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,

इस भूतल ही को स्वर्ग बनाने आया।

गुप्त जी का काव्य मानस की प्रेरणा और प्रवृत्ति का स्रोत है। आधुनिक काल का यह समन्वित रूप है। मानवीय चरित्र की जितनी भी संभावनाएँ संभव हैं, उस सबकी सृष्टि राम का चरित्र है।

भाषा-शैली

शैलियों के निर्वाचन में मैथिलीशरण गुप्त ने विविधता दिखाई, किन्तु प्रधानता प्रबंधात्मक इतिवृत्तमय शैली की है। उनके अधिकांश काव्य इसी शैली में हैं-'रंग में भंग', 'जयद्रथ वध', 'नहुष', 'सिद्धराज', 'त्रिपथक', 'साकेत' आदि प्रबंध शैली में हैं। यह शैली दो प्रकार की है-'खंड काव्यात्मक' तथा 'महाकाव्यात्मक'। साकेत महाकाव्य है तथा शेष सभी काव्य खंड काव्य के अंतर्गत आते हैं।

गुप्त जी की एक शैली विवरण शैली भी है। 'भारत-भारती' और 'हिन्दू' इस शैली में आते हैं।

तीसरी शैली गीत शैली है। इसमें गुप्त जी ने नाटकीय प्रणाली का अनुगमन किया है। 'अनघ' इसका उदाहरण है।

आत्मोद्‌गार प्रणाली गुप्त जी की एक और शैली है, जिसमें 'द्वापर' की रचना हुई है।

नाटक, गीत, प्रबंध, पद्य और गद्य सभी के मिश्रण एक मिश्रित शैली है, जिसमें 'यशोधरा' की रचना हुई है।

इन सभी शैलियों में गुप्त जी को समान रूप से सफलता नहीं मिली। उनकी शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें इनका व्यक्तित्व झलकता है। पूर्ण प्रवाह है। भावों की अभिव्यक्ति में सहायक होकर उपस्थित हुई हैं। मैथिलीशरण गुप्त की काव्य भाषा खड़ी बोली है। इस पर उनका पूर्ण अधिकार है। भावों को अभिव्यक्त करने के लिए गुप्त जी के पास अत्यंत व्यापक शब्दावली है। उनकी प्रारंभिक रचनाओं की भाषा तत्सम है। इसमें साहित्यिक सौन्दर्य कला नहीं है। 'भारत-भरती' की भाषा में खड़ी बोली की खड़खड़ाहट है, किन्तु गुप्त जी की भाषा क्रमशः विकास करती हुई सरस होती गयी। संस्कृत के शब्द भंडार से ही उन्होंने अपनी भाषा का भण्डार भरा है, लेकिन 'प्रियप्रवास' की भाषा में संस्कृत बहुला नहीं होने पायी। इसमें प्राकृत रूप सर्वथा उभरा हुआ है। भाव व्यंजना को स्पष्ट और प्रभावपूर्ण बनाने के लिए संस्कृत का सहारा लिया

गया है। संस्कृत के साथ गुप्त जी की भाषा पर प्रांतीयता का भी प्रभाव है। उनका काव्य भाव तथा कला पक्ष दोनों की दृष्टि से सफल है।

काव्यगत विशेषताएँ

इनके काव्य की विशेषताएँ इस प्रकार उल्लेखित की जा सकती हैं-

- राष्ट्रीयता और गांधीवाद की प्रधानता।
- गौरवमय अतीत के इतिहास और भारतीय संस्कृति की महत्ता।
- पारिवारिक जीवन को भी यथोचित महत्ता।
- नारी मात्र को विशेष महत्त्व।
- प्रबंध और मुक्तक दोनों में लेखन।
- शब्द शक्तियों तथा अलंकारों के सक्षम प्रयोग के साथ मुहावरों का भी प्रयोग

पतिवियुक्ता नारी का वर्णन

स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रकवि के आसंदी पर आरूढ़ मैथिलीशरण गुप्त जी ने अपने साठ वर्षीय काव्य साधना, कला में लगभग सत्तर कृतियों की रचना करके न केवल हिन्दी साहित्य की, अपितु सम्पूर्ण भारतीय समाज की अमूल्य सेवा की है। उन्होंने अपने काव्य में एक ओर भारतीय राष्ट्रवाद, संस्कृति, समाज तथा राजनीति के विषय में नये प्रतिमानों को प्रतिष्ठित किया, वहीं दूसरी ओर व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के अंतरूसम्बंधों के आधार पर इन्हें नवीन अर्थ भी प्रदान किया है। गुप्तजी द्विवेदी युग के प्रमुख कवि थे। वह युग जातीय जागरण और राष्ट्रीय उन्मेष का काल था। वे अपने युग और उसकी समस्याओं के प्रति अत्यंत संवेदनशील थे। उनका संवेदनशील और जागरूक कवि हृदय देश की वर्तमान दशा से क्षुब्ध था। वे धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों को इस दुर्दशा का मूल कारण मानते थे। अतः उनके राष्ट्रवाद की प्रथम जागृति धार्मिक और सामाजिक सुधारवाद के रूप में दिखाई देती है। नारियों की दुरवस्था तथा दुःखियों दीनों और असहायों की पीड़ा ने उसके हृदय में करुणा के भाव भर दिये थे। यही वजह है कि उनके अनेक काव्य ग्रंथों में नारियों की पुनर्प्रतिष्ठा एवं पीड़ित के प्रति सहानुभूति झलकती है। नारियों की दशा को व्यक्त करती उनकी ये पंक्तियां पाठकों के हृदय में करुणा उत्पन्न करती है-

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

एक समुन्नत, सुगठित और सशक्त राष्ट्रीय नैतिकता से युक्त आदर्श समाज, मर्यादित एवं स्नेहसिक्त परिवार और उदात्त चरित्र वाले नर-नारी के निर्माण की दिशा में उन्होंने प्राचीन आख्यानों को अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाकर उनके सभी पात्रों को एक नया अभिप्राय दिया है। जयद्रथवध, साकेत, पंचवटी, सैरन्ध्री, बक संहार, यशोधरा, द्वापर, नहुष, जयभारत, हिडिम्बा, विष्णु प्रिया एवं रत्नावली आदि रचनाएं इसके उदाहरण हैं। गुप्त जी मर्यादा प्रेमी भारतीय कवि हैं। उनके ग्रंथों के सुपात्र वारिक व्यक्ति हैं। उन्होंने संयुक्त परिवार को सर्वोपरि महत्त्व दिया है तथा नैतिकता और मर्यादा से युक्त सहज सरल पारिवारिक व्यक्ति को श्रेष्ठ माना है। ऐसे ही व्यक्ति में उदात्त गुणों का प्रादुर्भाव हो सकता है। इस संदर्भ में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का कथन द्रष्टव्य है-मैथिलीशरण गुप्त ने सम्पूर्ण भारतीय पारिवारिक वातावरण में उदात्त चरित्रों का निर्माण किया है। उनके काव्य शुरू से अंत तक प्रेरणा देने वाले हैं। उनमें व्यक्तित्व का स्वतः समुच्छित उच्छ्वास नहीं है, पारिवारिक व्यक्तित्व का और संयत जीवन का विलास है। वस्तुतः गुप्तजी पारिवारिक जीवन के कथाकार है। परिवार का अस्तित्व नारी के बिना असंभव है। इसीलिए वे नारी को जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग मानते हैं। नारी के प्रति उनकी दृष्टि रोमानी न होकर मर्यादावादी और सांस्कृतिक रही है। वे अपने नारी पात्रों में उन्हीं गुणों की प्रतिष्ठा करते हैं, जो भारतीय कुलवधू के आदर्श माने गये हैं। उनकी दृष्टि में नारी भोग्य मात्र नहीं, अपितु पुरुष का पूरक अंग है। इसीलिए उनके काव्य में नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व स्वाभिमान, दर्प और स्वावलम्बन का समुचित चित्रण हुआ है। उनके काव्य में नारी, अधिकारों के प्रति सजग, शीलवती, मेधाविनी, समाजसेविका, साहसवती, त्यागशीलता और तपस्विनी के रूप में उपस्थित हुई। इस अनुपम सृष्टि, इसके सर्जक और इसके महत्त्वपूर्ण घटक नर-नारी के प्रति गुप्तजी की पूर्ण आस्था है। इस आस्था के दर्शन उनके काव्य में होते हैं। आस्था का विखंडन गुप्तजी के लिए असहनीय है। नारी के प्रति पुरुष का अनुचित आचरण उन्हें अस्वीकार है। इसीलिए 'द्वापर' में विधृता के माध्यम से इन पंक्तियों को प्रस्तुत करते हैं-

नर के बांटे क्या नारी की नग्न मूर्ति ही आई।
माँ बेटी या बहिन हाय, क्या संग नहीं लाई

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी गुप्तजी के काव्य-गुरु थे। द्विवेदी जी के कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता के विमर्श ने गुप्त जी को साकेत महाकाव्य लिखने के लिए प्रेरित किया। भारत वर्ष में गूंजे हमारी भारती की प्रार्थना करने वाले कवि कालान्तर में, विरहिणी नारियों के दु:ख से द्रवित हो जाते हैं। परिवार में रहती हुई पतिवियुक्ता नारी की पीड़ा को जिस शिद्दत के साथ गुप्तजी अनुभव करते हैं और उसे जो बानगी देते हैं, वह आधुनिक साहित्य में दुर्लभ है। उनकी वियोगिनी नारी पात्रों में उर्मिला (साकेत महाकाव्य), यशोधरा (काव्य) और विष्णु प्रिया खण्डकाव्य प्रमुख है। उनका करूण विप्रलम्भ तीनों पात्रों में सर्वाधिक मर्मस्पर्शी बन पड़ा है। उनके जीवन संघर्ष, उदात्त विचार और आचरण की पवित्रता आदि मानवीय जिजीविषा और सोदेश्यता को प्रमाणित करते हैं। गुप्तजी की तीनों विरहिणी नायिकाएं विरह ताप में तपती हुई भी अपने तन-मन को भस्म नहीं होने देती, वरन् कुंदन की तरह उज्ज्वल वर्णी हो जाती हैं। साकेत की उर्मिला रामायण और रामचरितमानस की सर्वाधिक उपेक्षित पात्र है। इस विरहिणी नारी के जीवन वृत्त और पीड़ा की अनुभूतियों का विशद वर्णन आख्यानकारों ने नहीं किया है। उर्मिला लक्ष्मण की पत्नी है और अपनी चारों बहनों में वही एक मात्र ऐसी नारी है, जिसके हिस्से में चौदह वर्षों के लिए पतिवियुक्ता होने का दु:ख मिला है।

उनकी अन्य तीनों बहनों में सीता, राम के साथ, मांडवी भरत के सान्निध्य में तथा श्रुतिकीर्ति शत्रुन के संग जीवन यापन करती हैं। उर्मिला का जीवन वृत्त और उसकी विरह-वेदना सर्वप्रथम मैथिलीशरण गुप्त जी की लेखनी से साकार हुई हैं। डॉ. जगीनचन्द सहगल लिखते हैं-साकेत मैथिलीशरण गुप्त का निज कवि धन है। यह उनका जीवन कार्य है। डॉ. सहगल कवि के लक्ष्य की ओर इंगित करते हुए आगे लिखते हैं, साकेत के कवि का लक्ष्य रामकथा के उपेक्षित पात्रों को प्रकाश में लाना तथा उसके देवत्व गुणयुक्त पात्रों को मानव रूप में उपस्थित करना है। गुप्तजी ने अपने काव्य का प्रधान पात्र राम और सीता को न बनाकर लक्ष्मण, उर्मिला और भरत को बनाया है। गुप्तजी ने साकेत में उर्मिला के चरित्र को जो विस्तार दिया है, वह अप्रतिम है। कवि ने उसे मूर्तिमति उषा, सुवर्ण की सजीव प्रतिमा कनक लतिका, कल्पशिल्पी की कला आदि कहकर उसके शारीरिक सौंदर्य की अनुपम झांकी प्रस्तुत की है। उर्मिला प्रेम एवं विनोद से परिपूर्ण हास-परिहास मयी रमणी है। उसका हास-परिहास बुद्धिमत्तापूर्ण है-लक्ष्मण

जब उर्मिला की मंजरी सी अंगुलियों में यह कला देखकर अपना सुध-बुध भूल जाते हैं और मत्त गज सा झूम कर उर्मिला से अनुनय करते हैं-

कर कमल लाओ तुम्हारा चूम लूं।

इसके प्रत्युत्तर में उर्मिला अपना कमल सा हाथ पति की ओर बढ़ाती हुई मुस्कराती है और विनोद भरे शब्दों में कहती है-

मत्त गज बनकर, विवेक न छोड़ना।
कर कमल कह, कर न मेरा तोड़ना।

एक ओर उसका दाम्पत्य जीवन अत्यन्त आल्हाद एवं उमंगों से भरा हुआ है तो दूसरी ओर उसमें त्याग, धैर्य एवं बलिदान की भावना अत्यधिक मात्र में विद्यमान है। लक्ष्मण के वन गमन का समाचार सुनकर उसके हृदय में भी सीता की भांति वन-गमन की इच्छा होती है, परन्तु लक्ष्मण की विवशता देखकर वह अपने प्रिय के साथ चलना उचित नहीं समझती। वह अपने हृदय में धैर्य धारण करके अपने मन को यह कह कर समझा लेती है-

तू प्रिय-पथ का विघ्न न बन
आज स्वार्थ है त्याग धरा।
हो अनुराग विराग भरा।
तू विकार से पूर्ण न हो
शोक भार से चूर्ण न हो

किन्तु उर्मिला अत्यन्त भोली-भाली सुकुमार एवं कोमल हृदयवाली भी है। राजसुखों में पली हुई वह नवयौवना वियोग का दु:ख क्या होता है, उसे नहीं जानती। इसीलिए अपने प्रियतम पति लक्ष्मण के बिछुड़ते ही वह अपने धैर्य को सम्हाल नहीं पाती और एक मुग्धानारी की भांति हाय कहकर धड़ाम से धरती पर गिर जाती है। उसका मूर्छित होना स्वाभाविक है, किन्तु सचेत होने पर उसकी बौद्धिकता पुन: जागृत हो जाती है और अपनी मूर्च्छा को वह नारी सुलभ दुर्बलता मानकर अपने पति के बारे में यही कामना करती है-

करना न सोच मेरा इससे। व्रत में कुछ विघ्न पड़े जिससे,

उर्मिला के चौदह वर्षों का विरहकाल व्यतीत करना आसान नहीं है। उसके पास लक्ष्मण के साथ बिताये हुए सुखमय जीवन की स्मृतियों के सिवाय कुछ भी नहीं है। एक-एक पल पर्वत सा प्रतीत होता है, किन्तु विरह के इस वृहत

काल को तो गुजारना ही होगा। यह निश्चय करके उर्मिला सेवा का मार्ग अपना लेती है। वह अपनी सासों की सेवा करती है, रसोई बनाती है, किसानों की दशा पूछती रहती है–

पूछी थी सुकालदशा मैंने आज देवर से

इतना ही नहीं। वह नगर की जितनी प्रोषित पतिकाएं हैं, उनकी सुध-बुध लेती है। उनके हाल चाल जानने के लिए आतुर रहती है। इस तरह एक विरह-विदग्धा सर्व सुविधा सम्पन्न राज वधु को एक लोक सेविका के रूप में रूपान्तरित करके राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने नारी को एक दिशा दी है। जीवन के प्रति अटूट आस्था स्थापित की है।

यशोधरा खण्डकाव्य

गुप्तजी की यशोधरा खण्डकाव्य में राजकुमार सिद्धार्थ की पत्नी यशोधरा के मनोभावों का बखूबी चित्रण हुआ है। यशोधरा भी एक वियोगिनी नारी है। सिद्धार्थ के द्वारा रात्रि में उसे सोती हुई छोड़कर राजप्रसाद से चुपचाप संन्यास हेतु निकल जाने से उसका मन आहत हो जाता है। यशोधरा को इसी बात का दु:ख था कि उसके पति समझते थे कि वह उनके मार्ग की बाधा बनेगी, इसीलिए उसे बिना बताएं घर छोड़कर चले गये। यही पीड़ा इसलिए और अधिक गहरी हो जाती है कि जो पत्नी सहधर्मिणी थी, जो उसके हर काम में सहयोग देती थी, उस पर सिद्धार्थ ने अविश्वास किया। यशोधरा का कहना है कि यदि वे उस पर विश्वास करते और गृहत्याग की बात बता देते तो वह उन्हें पूरा सहयोग देती। उसने अपने आहत अभिमान की व्यंजना-सखि वे मुझसे कहकर जाते। गीत में करती है, वह गा उठती है–

सिद्धि हेतु स्वामी गये यह गौरव की बात।
पर चोरी चोरी गये यह बड़ी आघात
सखी वे मुझसे कहकर जाते।

विरहिणी यशोधरा की आंखों का पानी कभी नहीं सूखता, राहुल के प्रति कर्तव्य भार को वहन करते हुए जल-जलकर काया को जीवित रखती है। एक तो वह पीड़ा का स्वागत करती है। वेदना तू भी भली बनी तो दूसरी वह मृत्यु का वरन् सुन्दर बन आयारी। गुप्तजी के नारी पात्र घोर संकट ओर विषम परिस्थितियों में भी धीरता, कर्मण्यता और कर्तव्य भावना का परित्याग नहीं करते। वे कर्तव्यनिष्ठा, त्यागशील और सहिष्णु नारी है। यशोधरा अपने 'वसुर शुद्धोदन

से भी अधिक धैर्यवान, सहिष्णु है और वह स्वनिर्मित मर्यादा में तल्लीन रहती है। गौतम द्वारा उनका परित्याग कर देने पर भी यशोधरा यही कामना करती है–

व्यर्थ न दिव्य देह वह तप–वर्षा–हिम–वात सहे।

उसकी सहिष्णुता का यह रूप है कि वह विरहिणी के असहाय दु:ख को भी अपने लिए मूल्यवान मानती है।

होता सुख का क्या मूल्य, जो न दु:ख रहता।
प्रिय हृदय सदय हो तपस्ताप क्यों सहता।
मेरे नयनों से नीर न यदि यह बहता।
तो शुष्क प्रेम की बात कौन फिर कहता।
रह दु:ख प्रेम परमार्थ दया मैं लाऊँ।
कह मुक्ति भला किसलिए तुम्हें मैं पाऊँ।

विष्णु प्रिया खण्डकाव्य

गुप्तजी की विष्णु प्रिया भी उर्मिला और यशोधरा के समान ही एक पतिवियुक्ता नारी हैं। पश्चिम बंगाल के प्रसिद्ध संत महाप्रभु चैतन्य की पत्नी के रूप में वह प्रतिष्ठित है। महाप्रभु चैतन्य के साथ उनका विवाह मात्र 12 वर्ष की आयु में हुआ और पति के संन्यासी बन जाने के कारण वह 26 वर्षों तक पतिवियुक्ता बन कर विरहाग्नि में जलती रही। वह सामान्य मध्यम परिवार की नारी है और निरूसंतान है। गुप्तजी ने विष्णु प्रिया खण्डकाव्य में भी एक भारतीय नारी की विवशता को दर्शाया है। श्री चैतन्य के संन्यास लेने के प्रसंग में विष्णु प्रिया के कथन–रो रो कर मरना नारी लिखा लायी है। इसका प्रमाण है। इसी तरह अनेक पंक्तियां एक सामान्य नारी के रूप में विष्णु प्रिया की विवशता को प्रकट करती हैं। यथा–देव ने लिखाया सुख फिर भी दिया नहीं, मेरी मति और गति केवल तुम्हीं–तुम्हीं आदि। यशोधरा की तरह उसके हृदय को भी यह सोचकर ठेस लगती है–हाय मैं छली गयी हूं, छिपकर भागे वे। चैतन्य के संन्यास ग्रहण करने हेतु चले जाने पर विष्णु प्रिया पति वियोग के सन्ताप को सहती हुई जीविकोपार्जन, सास की सेवा और पति–चिंतन के सहारे समय व्यतीत करती है। इस तरह गुप्त जी ने विष्णु प्रिया में प्रेम, पीड़ा और कर्तव्य भावना का समन्वय किया है। स्वप्न दर्शन के माध्यम से उसके आत्मबल को अभिव्यक्त किया है और पर्वोत्सवों के माध्यम से उसकी करुणामयी सामाजिक चेतना, वेदना तथा उदार भावना को प्रकट किया है। पति और सास के स्वर्गारोहण के बाद विष्णु

प्रिया नितान्त अकेली रह जाती है। वह हताश होकर इस दुनिया को छोड़ देना चाहती है किन्तु वह मर नहीं पाती, क्योंकि वह पति-स्मरण छोड़ नहीं पाती थी। उसे चैतन्य की मूर्ति में विलीन होने का स्वप्न आता है। वह सती भी नहीं हो सकती, क्योंकि स्वप्न में चैतन्य का आदेश था-आयु शेष रहते मरण आत्मघात है, मेरी एक मूर्ति रखो निज गृह कक्ष में। इस आदेश के अनुसार विष्णु प्रिया ने एक मंदिर बनवाया-मंदिर बनाया निज गेह उस देवी ने। इस तरह विरहिणी विष्णु प्रिया एकान्तवासिनी होकर जितने मंत्र, 'लोक जपती थी, उतने ही धान्य-कणों का भोजन करती हुई पति, और सास का चिन्तन करती है। इस तरह गुप्तजी की विष्णु प्रिया पतिवियुक्ता विरहिणी होकर भी भारतीय मध्यमवर्गीय परिवार की सहनशीला, सेवाभावी, पतिपरायणा, और सदा गृहस्थ नारी के रूप में चित्रित हुई है।

प्रमुख कृतियाँ

'भारत-भारती' पुस्तक का आवरण पृष्ठ

मैथिलीशरण के नाटकों में 'अनघ' जातक कथा से सम्बद्ध बोधिसत्व की कथा पर आधारित पद्य में लिखा गया नाटक है।

प्रमुख कृतियाँ नाम	**प्रकाशित वर्ष**
जयद्रथ वध	1910
भारत-भारती	1912
पंचवटी	1925
साकेत	1933
यशोधरा	1932
विष्णु प्रिया	1957
झंकार	1929
जयभारत	1952
द्वापर	1936

अर्जन और विसर्जन

प्रमुख नाटक मौलिक नाटक	**भास नाटक**
अनघ	स्वप्नवासवदत्ता
चरणदास	प्रतिमा

तिलोत्तमा	अभिषेक
निष्क्रिय प्रतिरोध	अविमारक

विसर्जन

गुप्त जी की 52 से भी अधिक काव्य रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें से कुछ अनूदित भी हैं। उन्होंने 'मधुप' उपनाम से 'विरहणी ब्रजांगन', 'प्लासी का युद्ध' और 'मेघनाद वध' नामक बंगला काव्य कृतियों का अनुवाद किया है तथा कुछ संस्कृत नाटकों के अनुवाद भी किये। इसी प्रकार 'रुबाइयात उमरखय्याम' भी उमर खयाम की रुबाइयों का हिन्दी रूपान्तर है। इनकी उल्लेखनीय मौलिक रचनाओं की तालिका में-रंग में भंग, जयद्रथ वध, पद्य प्रबंध, भारत-भारती, शकुंतला, तिलोत्तमा, चंद्रहास, पत्रवली, वैतालिका, किसान, अनघ, पंचवटी, स्वदेश संगीत, हिन्दू, विपथगा, शक्ति विकटभट, गुरुकुल, झंकार, साकेत, यशोधरा, सिद्धराज, द्वापर, मंगलघट, नहुष, कुणालगीत, काबा और कर्बला, प्रदक्षिणा, जयभारत, विष्णु प्रिया आदि आते हैं।

पुरस्कार व सम्मान

मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी के प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि कहे जाते हैं। सन 1936 में इन्हें काकी में अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया था। इनकी साहित्य सेवाओं के उपलक्ष्य में आगरा विश्वविद्यालय तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने इन्हें डी. लिट. की उपाधि से विभूषित भी किया। 1952 में गुप्त जी राज्य सभा के सदस्य मनोनीत हुए और 1954 में उन्हें 'पद्मभूषण' अलंकार से सम्मानित किया गया। इसके अतिरिक्त उन्हें हिन्दुस्तानी अकादमी पुरस्कार, 'साकेत' पर 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' तथा 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से भी अलंकृत किया गया। 'हिन्दी कविता' के इतिहास में गुप्त जी का यह सबसे बड़ा योगदान है। 'साकेत' उनकी रचना का सर्वोच्च शिखर है।

मृत्यु

मैथिलीशरण गुप्त जी का देहावसान 12 दिसंबर, 1964 को चिरगांव में ही हुआ। इनके स्वर्गवास से हिन्दी साहित्य को जो क्षति पहुंची, उसकी पूर्ति संभव नहीं है।

11

बालकृष्ण शर्मा नवीन

बालकृष्ण शर्मा नवीन हिन्दी जगत् के कवि, गद्यकार और अद्वितीय वक्ता थे।

जीवन परिचय

हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील लेखन के अग्रणी कवि पंडित बालकृष्ण शर्मा "नवीन" का जन्म 8 दिसम्बर, 1897 ई. में ग्वालियर राज्य के भयाना नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता श्री जमनालाल शर्मा वैष्णव धर्म के प्रसिद्ध तीर्थ श्रीनाथ द्वार में रहते थे, वहाँ शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं थी, इसलिए इनकी माँ इन्हें ग्वालियर राज्य के शाजापुर स्थान में ले आईं। यहाँ से प्रारंभिक शिक्षा लेने के उपरांत इन्होंने उज्जैन से दसवीं और कानपुर से इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण की। इनके उपरांत लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक श्रीमती एनी बेसेंट एवं श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के संपर्क में आने के बाद उन्होंने पढ़ना छोड़ दिया। शाजापुर से अंग्रेजी मिडिल पास करके वे उज्जैन के माधव कॉलेज में प्रविष्ट हुए। इनको राजनीतिक वातावरण ने शीघ्र ही आकृष्ट किया और इसी से वे सन् 1916 ई. के लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन को देखने के लिए चले आये। इसी अधिवेशन में संयोगवश उनकी भेंट माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त एवं गणेशशंकर विद्यार्थी से हुई। सन् 1917 ई. में हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करके बालकृष्ण शर्मा गणेशशंकर विद्यार्थी के आश्रम में कानपुर आकर क्राइस्ट चर्च कॉलेज में पढ़ने लगे।

व्यावहारिक राजनीति

सन् 1920 ई. में बालकृष्ण शर्मा जब बी.ए. फाइनल में पढ़ रहे थे, गांधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन के आवाहन पर वे कॉलेज छोड़कर व्यावहारिक राजनीति के क्षेत्र में आ गये। 29 अप्रैल, 1960 ई. को अपने मृत्युपर्यन्त वे देश की व्यावहारिक राजनीति से बराबर सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे। उत्तर प्रदेश के वे वरिष्ठ नेताओं में एक एवं कानपुर के एकछत्र अगुआ थे। भारतीय संविधान निर्मात्री परिषद के सदस्य के रूप में हिन्दी भाषा को राजभाषा के रूप में स्वीकार कराने में उनका बड़ा योगदान रहा है। 1952 ई. से लेकर अपनी मृत्यु तक वे भारतीय संसद के भी सदस्य रहे हैं। सन् 1955 ई. में स्थापित राजभाषा आयोग के सदस्य के रूप में उनका महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है।

व्यक्तित्व

'नवीन' जी स्वभाव से अत्यन्त उदार, फक्कड़, आवेशी किन्तु मस्त तबियत के आदमी थे। अभिमान और छल से बहुत दूर थे। बचपन के वैष्णव संस्कार उनमें यावज्जीवन बने रहे। जहाँ तक उनके लेखक-कवि व्यक्तित्व का प्रश्न है, लेखन की ओर उनकी रुचि इंदौर से ही थी, परन्तु व्यवस्थित लेखन 1917 ई. में गणेशशंकर विद्यार्थी के सम्पर्क में आने के बाद प्रारम्भ हुआ।

पत्रकार

गणेशशंकर विद्यार्थी से सम्पर्क का सहज परिणाम था कि वे उस समय के महत्त्वपूर्ण पत्र 'प्रताप' से सम्बद्ध हो गये थे। 'प्रताप' परिवार से उनका सम्बन्ध अन्त तक बना रहा। 1931 ई. में गणेशशंकर विद्यार्थी की मृत्यु के पश्चात् कई वर्षों तक वे 'प्रताप' के प्रधान सम्पादक के रूप में भी कार्य करते रहे। हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य धारा को आगे बढ़ाने वाली पत्रिका 'प्रभा' का सम्पादन भी, उन्होंने 1921-1923 ई. में किया था। इन पत्रों में लिखी गई उनकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ अपनी निर्भीकता, खरेपन और कठोर शैली के लिए स्मरणीय हैं। 'नवीन' अत्यन्त प्रभावशाली और ओजस्वी वक्ता भी थे एवं उनकी लेखन शैली (गद्य-पद्य दोनों ही) पर उनकी अपनी भाषण-कला का बहुत स्पष्ट प्रभाव है। राजनीतिक कार्यकर्ता के समान ही पत्रकार के रूप में भी उन्होंने सारे जीवन कार्य किया।

राजनीतिज्ञ एवं पत्रकार के समानान्तर ही उनके व्यक्तित्व का तीसरा भास्वर पक्ष कवि का था। उनके कवि का मूल स्वर मनोरंजक था, जिसे वैष्णव संस्कारों की आध्यात्मिकता एवं राष्ट्रीय जीवन का विद्रोही कण्ठ बराबर अनुकूलित करता रहा। उन्होंने जब लिखना प्रारम्भ किया तब द्विवेदी युग समाप्त हो रहा था एवं राष्ट्रीयता के नये आयाम की छाया में स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन काव्य में मुखर होने लगा था। परिणामस्वरूप दोनों ही युगों की प्रवृत्तियाँ हमें 'नवीन' में मिल जाती हैं।

कृतियाँ

उर्मिला

महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा ने ही कवियों की चिर-उपेक्षिता 'उर्मिला' का लेखन उनसे 1921 ई. में प्रारम्भ कराया, जो पूरा सन् 1934 ई. में हुआ एवं प्रकाशित सन् 1957 ई. में हुआ। इस काव्य में द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता, स्थूल नैतिकता या प्रयोजन (जैसे–रामवन गमन को आर्य संस्कृति का प्रसार मानना) स्पष्ट देखे जा सकते हैं, परन्तु मूलतः स्वच्छन्दतावादी गीतितत्वप्रधान 'नवीन' का यह प्रयास प्रबन्धत्व की दृष्टि से बहुत सफल नहीं कहा जा सकता। छः सर्गों वाले इस महाकाव्य ग्रन्थ में उर्मिला के जन्म से लेकर लक्ष्मण से पुनर्मिलन तक की कथा कही गयी है, पर वर्णन प्रधान कथा के मार्मिक स्थलों की न तो उन्हें पहचान है और न राम-सीता के विराट व्यक्तित्व के आगे लक्ष्मण-उर्मिला बहुत उभर ही सके हैं। उर्मिला का विरह अवश्य कवि की प्रकृति के अनुकूल था और कला की दृष्टि से सबसे सरस एवं प्रौढ़ अंश वही है। यों अत्यन्त विलम्ब से प्रकाशित होने के कारण सम्यक् ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इस ग्रन्थ का मूल्यांकन नहीं हो सका है। यह विलम्ब उनकी सभी कृतियों के प्रकाशन में हुआ है।

कुंकुम

सन् 1930 ई. तक वे यद्यपि कवि रूप में यशस्वी हो चुके थे, परन्तु पहला कविता संग्रह 'कुंकुम' 1936 ई. में प्रकाशित हुआ। इस गीत संग्रह का मूल स्वर यौवन के पहले उद्दाम प्रणयावेग एवं प्रखर राष्ट्रीयता का है। यत्र-तत्र रहस्यात्मक संकेत भी हैं, परन्तु उन्हें तत्कालीन वातावरण का फैशन प्रभाव ही मानना चाहिए।

'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ' तथा 'आज खड्ग की धार कुण्ठिता है' जैसी प्रसिद्ध कविताएँ 'कुंकुम' में संग्रहीत हैं।

अन्य रचनाएँ

स्वतंत्रता संग्राम का सबसे कठिन एवं व्यस्त समय आ जाने के कारण 'नवीन' बराबर उसी में उलझे रहे। कविताएँ उन्होंने बराबर लिखीं, परन्तु उनको संकलित कर प्रकाशित कराने की ओर ध्यान नहीं रहा। स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद भी वे संविधान निर्माण जैसे कार्यों में लगे रहे। इस प्रकार एक लम्बे अन्तराल के पश्चात् 1951 ई. में 'रश्मि रेखा' तथा 'अपलक', 1952 ई. में और 'क्वासि' संग्रह प्रकाशित हुआ। विनोबा और भूदान पर लिखी उनकी कतिपय प्रशस्तियाँ एवं उदबोधनों का एक संग्रह 'विनोबा स्तवन' सन् 1955 ई. में प्रकाशित हुआ। इस प्रकाशित सामग्री के अतिरिक्त कुंकुम-क्वासि काल (1930-1949) की अनेक कविताएँ तथा 'प्राणर्पण' नाम से गणेशशंकर विद्यार्थी के बलिदान पर लिखा गया खण्ड काव्य अभी अप्रकाशित ही है। 1949 ई. के बाद भी वे बराबर लिखते एवं पत्रों में प्रकाशित कराते रहे हैं। "यह शल युक्त यह अहिआलिंगित जीवन" जैसी श्रेष्ठ आत्मपरक कविताएँ इसी अन्तिम अवस्था में लिखी गयी हैं, पर ये सब भी असंग्रहीत हैं। 'नवीन' राष्ट्रीय वीर काव्य के प्रणेताओं में मुख्य रहे हैं, परन्तु उनके प्रकाशित संग्रहों में ये कविताएँ बहुत कम आ सकी हैं। उनका गद्य लेखन भी असंकलित रूप में यत्र-तत्र बिखरा हुआ है।

रश्मिरेखा

अब तक प्रकाशित संग्रहों में प्रणय के कवि 'नवीन' का संवेदना और शिल्प की समग्रता की दृष्टि से श्रेष्ठतम एवं प्रतिनिधि संग्रह 'रश्मिरेखा' है। इसमें 'नवीन' की मौजी एवं प्रेमिल अभिव्यक्तियाँ प्रचुर मात्रा में हैं। "हम अनिकेतन हम अनिकेतन" अत्यन्त निर्लिप्त आत्मस्वीकरण के भाव से वे कह उठते हैं,

अब तक इतनी यों ही काटी, अब क्या सीखें नव परिपाटी? कौन बनाये आज घरौंदा, हाथों चुन-चुन कंकड़ माटी। ठाट फकीराना हैं, अपना बाघम्बर सोहे अपने तन।

प्रणय एवं विरह की कितनी ही मादक स्मृतियाँ, कितने ही मनोरम चित्र, कितने ही व्याकुल बेसुध पुकारें एवं विवशता की कितनी ही चीत्कारें 'रश्मिरेखा' में संग्रहीत हैं। यह प्रणयी अनिकेतन अत्यन्त उद्दाम भाव से कहता है,

कृजे दो कृजे में बुझने वाली प्यास नहीं, बार-बार 'ला!ला!' कहने का समय नहीं, अभ्यास नहीं।

वस्तुतः हिन्दी में हालाबाद के आदि प्रवर्तक 'नवीन' ही हैं तथा भगवतीचरण वर्मा एवं 'बच्चन' ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है।

'अपलक' और 'क्वासि'

'अपलक' और 'क्वासि' में संकलित कविताओं में यद्यपि कविताओं का रचनाकाल वही है, जो 'रश्मिरेखा' की कविताओं का है। पर इनमें जो कविताएँ संकलित हैं, उनमें प्रणय का वेग दर्शन एवं भक्ति भावना से प्रतिहत होता लगता है। 'आध्यात्मिकता' का स्वर छायावाद के बहुत से आलोचकों को भी भ्रम और विवाद में डालता रहा है, परन्तु शिल्प के जिस लाक्षणिक वैचित्र्य के माध्यम से वह स्वर व्यक्त हुआ है, उसने उन कविताओं को अनगढ़ नहीं होने दिया। परन्तु 'नवीन' का छायावादकाल में ही लिखा गया यह अध्यात्म निवेदन बहुत कुछ स्थूल एवं इतिवृत्तात्मक पदावली में व्यक्त हुआ है। छायावाद के शिल्प को वे मन से नहीं स्वीकार करते, पर रहस्य या अध्यात्म की पदावली उन पर हावी प्रतीत होती है, परन्तु इन संकलनों में जहाँ उनका मस्त एवं प्रणयी व्यक्तित्व सहज ही व्यक्त हुआ है, वहाँ काव्य नितान्त रसनिर्भर हो सका है। 'हम हैं मस्त फकीर' ('अपलक') 'तुम युग-युग की पहचानी सी' ('क्वासि'), 'मान छोड़ो' (क्वासि), 'सुन लो प्रिय मधुर गान' ('अपलक'), ऐसी ही कविताएँ हैं। आध्यात्मिक अन्योक्ति की दृष्टि से 'डोलेवालों' ('क्वासि') उनकी श्रेष्ठतम कविता है।

भाषा

ब्रजभाषा 'नवीन' की मातृभाषा थी। उनके प्रत्येक ग्रन्थ में ब्रजभाषा के भी कतिपय गीत या छन्द मिलते हैं। ब्रजभाषा में 'नवीन' भाव-संवेदना की अभिव्यक्ति का प्रयास कर उन्होंने ब्रजभाषा के आधुनिक साहित्य को समृद्ध किया है। उर्मिला का एक सम्पूर्ण सर्ग ही ब्रजभाषा में है, परन्तु उनका ब्रजभाषा मोह एवं खड़ी बोली के परिनिष्ठित प्रयोगों के मध्य आ प्रकट होता है, तब पाठक के लिए रसभंग की स्थिति पैदा हो जाती है। ब्रजभाषा के क्रियापदों या शब्दों जानूँ हूँ, सोचूँ हूँ, नैक, लागी, नचीं, उमड़ाय दिया आदि का निखरी तत्सम प्रधान खड़ी बोली में प्रयोग अत्यन्त अकुशल ढंग से हुआ है। वस्त्र के लिए 'बस्तर' जैसे-प्रयोग भी बहुधा खटकते हैं। वस्तुतः आधुनिक काल के श्रेष्ठ कवियों में 'नवीन' से अधिक भाषा के भ्रष्ट प्रयोग मिल ही नहीं सकते। लगता है यह भी

उनकी भाषणकला का ही प्रभाव था। सम्भवत: राजनीतिक व्यस्तता भी इस परिष्कारहीनता के मूल में थी। संस्कृत के भारी भरकम अप्रचलित एवं दुरूह शब्दों को लाने की प्रवृत्ति उनकी बराबर बढ़ती गयी है।

दुरूह अकाव्यात्मक शब्दावली

सन 1950-51 ई. के बाद की कविताओं में अध्यात्म मोह के साथ-साथ दुरूह अकाव्यात्मक शब्दावली ('ाब्द और अर्थ के वक्र कविव्यापारशाली सहभाव से विच्छिन्न) का उनका आग्रह उनके काव्य के रसास्वादन में बराबर बाधक बनता गया है। लगता है शैली जीतती गयी है और वे हारते गये हैं।

काव्य

हिन्दी काव्य धारा की द्विवेदी युग के पश्चात्, जो परिणति छायावाद से हुई है, 'नवीन' उसके अंतर्गत नहीं आते। राजनीति के कठोर यथार्थ में उनके लिए शायद यह सम्भव नहीं था कि वैसी भावुकता, तरलता, अतीन्द्रियता एवं कल्पना के पंख वे बाँधते, परन्तु इस बात को याद रखना होगा कि उनका काव्य भी स्वच्छन्दतावादी (मनोरंजक) आन्दोलन का ही प्रकाश है। 'नवीन' मैथिलीशरण गुप्त आदि का काव्य छायावाद के समानान्तर संचरण करता हुआ आगे चलकर बच्चन, अंचल, नरेन्द्र शर्मा, दिनकर आदि के काव्य में परिणत होता है। काव्यधारा के इस प्रवाह की ओर हिन्दी आलोचकों ने अभी तक उपेक्षा का ही भाव रखा है। अस्तु, 'नवीन' के काव्य में एक ओर राष्ट्रीय संग्राम की कठोर जीवनाभूतियाँ एवं जागरण के स्वर व्यंजित हुए हैं और दूसरे सहज मानवीय स्तर (योद्धा से अलग) पर प्रेम-विरह की राग-संवेदनाएँ प्रकाश पा सकी हैं। इसी क्रम में हालावादी काव्य की भी सृष्टि हुई है। इस प्रकार छायावाद के समानान्तर बहने वाली वीरश्रृंगार धारा के वे अग्रणी कवि रहे हैं। कवि के अतिरिक्त गद्यलेखक के रूप में भी 'प्रताप' जैसे पत्र के माध्यम से उन्होंने ओज-गुणप्रधान एक शैली के निर्माण में अपना योग दिया है।

पुरस्कार

बालकृष्ण नवीन को साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में सन् 1960 में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था।

मृत्यु

बालकृष्ण शर्मा नवीन जी का निधन 29 अप्रैल, 1960 ई. में हुआ था।

12

रामविलास शर्मा

डॉ. रामविलास शर्मा (10 अक्टूबर, 1912-30 मई, 2000) आधुनिक हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध आलोचक, निबंधकार, विचारक एवं कवि थे। व्यवसाय से अंग्रेजी के प्रोफेसर, दिल से हिन्दी के प्रकांड पंडित और महान विचारक, ऋग्वेद और मार्क्स के अध्येता, कवि, आलोचक, इतिहासवेत्ता, भाषाविद, राजनीति-विशारद ये सब विशेषण उन पर समान रूप से लागू होते हैं।

उन्नाव जिला के ऊँचगाँव सानी में जन्मे डॉ. रामविलास शर्मा ने लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम.ए. किया और वहीं अस्थाई रूप से अध्यापन करने लगे। 1940 में वहीं से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। 1943 से आपने बलवंत राजपूत कॉलेज, आगरा में अंग्रेजी विभाग में अध्यापन किया और अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष रहे। 1971-74 तक कन्हैयालाल माणिक मुंशी हिन्दी विद्यापीठ, आगरा में निदेशक पद पर रहे, 1974 में सेवानिवृत्त हुये।

डॉ. रामविलास शर्मा के साहित्यिक जीवन का आरंभ 1934 से होता है, जब वह सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के संपर्क में आये। इसी वर्ष उन्होंने अपना प्रथम आलोचनात्मक लेख 'निरालाजी की कविता' लिखा, जो चर्चित पत्रिका 'चाँद' में प्रकाशित हुआ। इसके बाद वे निरंतर सृजन की ओर उन्मुख रहे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद डॉ. रामविलास शर्मा ही एक ऐसे आलोचक के रूप में स्थापित होते हैं, जो भाषा, साहित्य और समाज को एक साथ रखकर मूल्यांकन करते हैं। उनकी आलोचना प्रक्रिया में केवल साहित्य ही नहीं होता, बल्कि वे

समाज, अर्थ, राजनीति, इतिहास को एक साथ लेकर साहित्य का मूल्यांकन करते हैं। अन्य आलोचकों की तरह उन्होंने किसी रचनाकार का मूल्यांकन केवल लेखकीय कौशल को जाँचने के लिए नहीं किया है, बल्कि उनके मूल्यांकन की कसौटी यह होती है कि उस रचनाकार ने अपने समय के साथ कितना न्याय किया है।

प्रकाशित कृतियाँ

- प्रेमचन्द (1941),
- भारतेन्दु युग (1943) परिवर्द्धित संस्करण 'भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा' (1975),
- निराला (1946),
- प्रेमचन्द और उनका युग (1952),
- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ (1985) (मूलत: 1953 में।),
- प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ (1954),
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना (1955),
- विराम चिह्न (1957),
- आस्था और सौन्दर्य (1961),
- निराला की साहित्य साधना-1 (जीवनी-1969),
- निराला की साहित्य साधना-2 (आलोचना-1972),
- निराला की साहित्य साधना-3 (पत्रचार संग्रह एवं बृहद् भूमिका-1976),
- महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण (1977),
- नयी कविता और अस्तित्ववाद (1978),
- परम्परा का मूल्यांकन (1981),
- भाषा, युगबोध और कविता (1981),
- कथा विवेचना और गद्यशिल्प (1982),
- मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य (1984),
- भाषा और समाज (1961),
- भारत की भाषा समस्या (1978, मूलत: 1965 में),
- भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी (तीन खण्डों में-1979-81)।
- सन् सत्तावन की राज्य क्रान्ति और मार्क्सवाद (1990 मूलत:1957 में),

- भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद (दो खण्डों में-1982),
- स्वाधीनता संग्राम–बदलते परिप्रेक्ष्य (1992),
- मार्क्स, त्रोत्स्की और एशियाई समाज (1986),
- मार्क्स और पिछड़े हुए समाज (1986),
- भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद (1992),
- पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद (1994),
- भारतीय नवजागरण और यूरोप (1996),
- इतिहास दर्शन (1995),
- भारतीय साहित्य की भूमिका (1996, संगीत का इतिहास भी मूलतः इसी में है।),
- भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश (दो खण्डों में-1999),
- भारतीय सौन्दर्य-बोध और तुलसीदास (2001, अपूर्ण),
- गाँधी, आम्बेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ (2000),
- मेरे साक्षात्कार (1994),
- चार दिन (उपन्यास), 1936,
- 'तार सप्तक' में संकलित कविताएँ, 1943,
- महाराजा कठपुतली सिंह(प्रहसन), 1946,
- पाप के पुजारी (नाटक), 1936,
- बुद्ध वैराग्य तथा प्रारम्भिक कविताएँ, 1997,
- अपनी धरती अपने लोग (आत्मजीवन, तीन खण्डों में-1996),
- आज के सवाल और मार्क्सवाद (2001),
- भाषा, साहित्य और जातीयता (2012),
- मित्र संवाद (1992, केदारनाथ अग्रवाल से पत्रव्यवहार),
- अत्र कुशलं तत्रस्तु (2004, अमृतलाल नागर से पत्रव्यवहार),
- पाश्चात्य दर्शन और सामाजिक अंतर्विरोध-थेल्स से मार्क्स तक (2001)।

लोकजागरण और हिन्दी साहित्य

- प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल (1986),
- रूप तरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि (1990, मूलतः1956),
- सदियों के सोये जाग उठे (कविता), 1998

- इनमें से अनेक पुस्तकों के संशोधित-परिवर्द्धित संस्करण बाद में प्रकाशित हुए हैं, उन्हें ही पढ़ना चाहिए। ये सभी पुस्तकें अब राजकमल, वाणी, किताबघर, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, साहित्य अकादमी एवं साहित्य भंडार प्रकाशनों से प्रकाशित हैं।
- ऐसे सामान्य पाठक, जो प्रमुख चुनिन्दा अंशों को ही पढ़ना चाहें, उनके लिए सर्वोत्तम संकलन है 'संकलित निबन्ध' (सं.अजय तिवारी, नेशनल बुक ट्रस्ट)

शर्मा जी पर केन्द्रित विशिष्ट साहित्य

रामविलास शर्मा का महत्त्व लेखक-रविभूषण, प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2018 हिन्दी आलोचना की परंपरा और डॉ. रामविलास शर्मा, लेखक-डॉ. कालूराम परिहार (ISBN-978-81-7975-246-3) प्रकाशक-अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि., नई दिल्ली (2009)।

शर्मा जी पर केन्द्रित अनेक पत्रिकाओं के विशेषांक प्रकाशित होते रहे हैं, जिनमें उपलब्ध और विशेष पठनीय हैं-

रामविलास शर्मा-सं.-विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ('दस्तावेज' का विशेषांक, पुस्तक रूप में वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से)।

हिन्दी के प्रहरी-डॉ. रामविलास शर्मा-सं.-विश्वनाथ त्रिपाठी, अरुण प्रकाश ('वसुधा' का विशेषांक, पुस्तक रूप में वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से),

युगपुरुष रामविलास शर्मा-सं.-जय नारायण बुधवार, प्रमिला बुधवार ('कल के लिए' का विशेषांक, पुस्तक रूप में स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली से),

उद्भावना अंक-104, नवंबर-दिसंबर 2012, रामविलास शर्मा महाविशेषांक, अतिथि संपादक-प्रदीप सक्सेना (पुस्तक रूप में रामविलास शर्मा का ऐतिहासिक योगदान, संपा. प्रदीप सक्सेना, अनुराग प्रकाशन, नयी दिल्ली से, प्र. सं.-2013),

समकालीन भारतीय साहित्य, अंक-167 (मई-जून 2013)

समग्रता में विचार करने वाले दो अति महत्त्वपूर्ण/अवश्य पठनीय आलेख-

अपने-अपने रामविलास-प्रणय कृष्ण, 'जनमत' 2002 में प्रकाशितय 2012 में पुनः प्रकाशित। प्रणय कृष्ण की पुस्तक 'शती स्मरण' (स्पॉट क्रिएटिव

सर्विसेज, 43 बी, लिडिल रोड, जॉर्ज टाउन, इलाहाबाद से प्रकाशित) में संकलित।,

'मैं' और 'वे' के बीच रामविलास शर्मा का ज्ञानकांड–अभय कुमार दुबे ('तद्भव'–26, अक्टूबर 2012 में प्रकाशित। वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से प्रकाशित अभय कुमार दुबे की पुस्तक 'हिंदी में हम' में हिंदी का ज्ञानकाण्ड शीर्षक से संकलित।)

हिंदी जाति की अवधारणा

हिंदी जाति की अवधारणा रामविलास शर्मा के जातीय चिंतन का केंद्रीय बिंदु है। भारतीय साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन तथा वैश्विक साहित्य से अन्तर्क्रिया के द्वारा रामविलास जी ने साहित्य के जातीय तत्वों की प्रगतिशील भूमिका की पहचान की है।

डॉ. रामविलास शर्मा और भारत का इतिहास

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद डॉ. रामविलास शर्मा ही एक ऐसे आलोचक के रूप में स्थापित होते हैं, जो भाषा, साहित्य और समाज को एक साथ रखकर मूल्यांकन करते हैं। उनकी आलोचना प्रक्रिया में केवल साहित्य ही नहीं होता, बल्कि वे समाज, अर्थ, राजनीति, इतिहास को एक साथ लेकर साहित्य का मूल्यांकन करते हैं। अन्य आलोचकों की तरह उन्होंने किसी रचनाकार का मूल्यांकन केवल लेखकीय कौशल को जाँचने के लिए नहीं किया है, बल्कि उनके मूल्यांकन की कसौटी यह होती है कि उस रचनाकार ने अपने समय के साथ कितना न्याय किया है।

इतिहास की समस्याओं से जूझना मानो उनकी पहली प्रतिज्ञा हो। वे भारतीय इतिहास की हर समस्या का निदान खोजने में जुटे रहे। उन्होंने जब यह कहा कि आर्य भारत के मूल निवासी हैं, तब इसका विरोध हुआ था। उन्होंने कहा कि आर्य पश्चिम एशिया या किसी दूसरे स्थान से भारत में नहीं आए हैं, बल्कि सच यह है कि वे भारत से पश्चिम एशिया की ओर गए हैं। वे लिखते हैं–''दूसरी सहस्त्राब्दी ईसा पूर्व बड़े-बड़े जन अभियानों की सहस्त्राब्दी है।

इसी दौरान भारतीय आर्यों के दल इराक से लेकर तुर्की तक फैल जाते हैं। वे अपनी भाषा और संस्कृति की छाप सर्वत्र छोड़ते जाते हैं। पूँजीवादी इतिहासकारों ने उल्टी गंगा बहाई है, जो युग आर्यों के बहिर्गमन का है, उसे वे

भारत में उनके प्रवेश का युग कहते हैं। इसके साथ ही वे यह प्रयास करते हैं कि पश्चिम एशिया के वर्तमान निवासियों की आँखों से उनकी प्राचीन संस्कृति का वह पक्ष ओझल रहे, जिसका संबंध भारत से है। सबसे पहले स्वयं भारतवासियों को यह संबंध समझना है, फिर उसे अपने पड़ोसियों को समझाना है।

भुखमरी, अशिक्षा, अंधविश्वास और नए-नए रोग फैलाने वाली वर्तमान समाज व्यवस्था को बदलना है। इसके लिए भारत और उसके पड़ोसियों का सम्मिलित प्रयास आवश्यक है। यह प्रयास जब भी हो, यह अनिवार्य है कि तब पड़ोसियों से हमारे वर्तमान संबंध बदलेंगे और उनके बदलने के साथ वे और हम अपने पुराने संबंधों को नए सिरे से पहचानेंगे। अतीत का वैज्ञानिक, वस्तुपरक विवेचन वर्तमान समाज के पुनर्गठन के प्रश्न से जुड़ा हुआ है।" (पश्चिम एशिया और ऋग्वेद पृष्ठ 20)

भारतीय संस्कृति की पश्चिम एशिया और यूरोप में व्यापकता पर जो शोधपरक कार्य रामविलासजी ने किया है, इस कार्य में उन्होंने नृतत्वशास्त्र, इतिहास, भाषाशास्त्र का सहारा लिया है। शब्दों की संरचना और उनकी उत्पत्ति का विश्लेषण कर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आर्यों की भाषा का गहरा प्रभाव यूरोप और पश्चिम एशिया की भाषाओं पर है।

वे लिखते हैं-''सन् 1786 में ग्रीक, लैटिन और संस्कृत के विद्वान विलियम जोंस ने कहा था, 'ग्रीक की अपेक्षा संस्कृत अधिक पूर्ण है। लेटिन की अपेक्षा अधिक समृद्ध है और दोनों में किसी की भी अपेक्षा अधिक सुचारू रूप से परिष्कृत है।' पर दोनों से क्रियामूलों और व्याकरण रूपों में उसका इतना गहरा संबंध है, जितना अकस्मात उत्पन्न नहीं हो सकता। यह संबंध सचमुच ही इतना सुस्पष्ट है कि कोई भी भाषाशास्त्री इन तीनों की परीक्षा करने पर यह विश्वास किए बिना नहीं रह सकता कि वे एक ही स्रोत से जन्मे हैं, जो स्रोत शायद अब विद्यमान नहीं है।

इसके बाद एक स्रोत भाषा की शाखाओं के रूप में जर्मन, स्लाव, केल्त आदि भाषा मुद्राओं को मिलाकर एक विशाल इंडो यूरोपियन परिवार की धारणा प्रस्तुत की गई। 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में तुलनात्मक और ऐतिहासिक भाषा विज्ञान ने भारी प्रगति की है। अनेक नई-पुरानी भाषाओं के अपने विकास तथा पारस्परिक संबंधों की जानकारी के अलावा बहुत से देशों के प्राचीन इतिहास के बारे में जो धारणाएँ प्रचलित हैं, वे इसी ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की देन हैं। आरंभ में यूरोप

के विद्वान मानते थे कि उनकी भाषाओं को जन्म देने वाली स्रोत भाषा का गहरा संबंध भारत से है। यह मान्यता मार्क्स के एक भारत संबंधी लेख में भी है।"

अँग्रेजों के प्रभुत्व से भारतीय जनता की मुक्ति की कामना करते हुए उन्होंने 1833 में लिखा था, ''हम निश्चयपूर्वक, न्यूनाधिक सुदूर अवधि में उस महान और दिलचस्प देश को पुनर्जीवित होते देखने की आशा कर सकते हैं, जहाँ के सज्जन निवासी राजकुमार साल्तिकोव (रूसी लेखक) के शब्दों में इटैलियन लोगों से अधिक चतुर और कुशल हैं, जिनकी अधीनता भी एक शांत गरिमा से संतुलित रहती है, जिन्होंने अपने सहज आलस्य के बावजूद अँग्रेज अफसरों को अपनी वीरता से चकित कर दिया है, जिनका देश हमारी भाषाओं, हमारे धर्मों का उद्‌गम है और जहाँ प्राचीन जर्मन का स्वरूप जाति में, प्राचीन यूनान का स्वरूप ब्राह्मण में प्रतिबिंबित है।" (पश्चिम एशिया और ऋग्वेद पृष्ठ 21)

डॉ. रामविलास शर्मा मार्क्सवादी दृष्टि से भारतीय संदर्भों का मूल्यांकन करते हैं, लेकिन वे इन मूल्यों पर स्वयं तो गौरव करते ही हैं, साथ ही अपने पाठकों को निरंतर बताते हैं कि भाषा और साहित्य तथा चिंतन की दृष्टि से भारत अत्यंत प्राचीन राष्ट्र है। वे अँग्रेजों द्वारा लिखवाए गए भारतीय इतिहास को एक षड्‌यंत्र मानते हैं।

उनका कहना है कि यदि भारत के इतिहास का सही-सही मूल्यांकन करना है तो हमें अपने प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करना होगा। अँग्रेजों ने जान-बूझकर भारतीय इतिहास को नष्ट किया है। ऐसा करके ही वे इस महान राष्ट्र पर राज कर सकते थे। भारत में व्याप्त जाति, धर्म के अलगाव का जितना गहरा प्रकटीकरण अँग्रेजों के आने के बाद होता है, उतना गहरा प्रभाव पहले के इतिहास में मौजूद नहीं है। समाज को बाँटकर ही अँग्रेज इस महान राष्ट्र पर शासन कर सकते थे और उन्होंने वही किया भी है। सर्व प्रथम नवजागरण शब्द का प्रयोग इनके द्वारा ही 1977 में लिखे गये पुस्तक "महाविर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण" में हुआ।

सम्मान

- 1970-'निराला की साहित्य साधना' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार।
- 1988-शलाका सम्मान।
- 1990-भारत भारती पुरस्कार।
- 1991-'भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी' के लिए व्यास सम्मान।

- 1999–साहित्य अकादमी की महत्तर सदस्यता सम्मान।
- 2000–शताब्दी सम्मान (11 लाख रुपये)।
- पुरस्कारों में प्राप्त राशियों को उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। उन राशियों को हिन्दी के विकास में लगाने को कहा।

शताब्दी वर्ष 2012–13

2012–2013 रामविलास शर्मा का जन्म–शताब्दी वर्ष था। रामविलास शर्मा के ऊपर अपना व्याख्यान देते हुये वीर भारत तलवार ने कहा था कि रामविलास शर्मा की मृत्यु ने हिन्दी मीडिया को झकझोर कर रख दिया था, वे कहते हैं–

रामविलास जी की मृत्यु के बाद, जो हिन्दी अखबार प्रकाशित हुए, उन सबों ने मुख्य पृष्ठ पर उनकी मृत्यु के समाचार को प्रमुखता से जगह दी। बड़ी–बड़ी सुर्खियाँ लगाईं, ऐसा कि 11 सितंबर को वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर जो हमला हुआ था, उसकी भी सुर्खियां ऐसी न थी। हिन्दी के किसी अन्य साहित्यकार को यह यह सम्मान प्राप्त नहीं है। मुझे नहीं लगता कि पूरे हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु की मृत्यु के बाद किसी और की मृत्यु के समाचार को इतनी प्रमुखता मिली होगी, जितनी रामविलास जी की।

इससे हम रामविलास शर्मा की लोकप्रियता और उनके जाने से हुए क्षति दोनों का अनुमान लगा सकते हैं।

13

दुष्यंत कुमार

दुष्यंत कुमार एक हिंदी कवि और गजलकार थे। समकालीन हिन्दी कविता विशेषकर हिन्दी गजल के क्षेत्र में जो लोकप्रियता दुष्यंत कुमार को मिली, वह दशकों बाद विरले किसी कवि को नसीब होती है। दुष्यंत एक कालजयी कवि हैं और ऐसे कवि समय काल में परिवर्तन हो जाने के बाद भी प्रासंगिक रहते हैं। दुष्यंत का लेखन का स्वर सड़क से संसद तक गूँजता है। इस कवि ने कविता, गीत, गजल, काव्य, नाटक, कथा आदि सभी विधाओं में लेखन किया, लेकिन गजलों की अपार लोकप्रियता ने अन्य विधाओं को नेपथ्य में डाल दिया।

जीवन परिचय

दुष्यंत कुमार का जन्म बिजनौर जनपद (उत्तर प्रदेश) के ग्राम राजपुर नवादा में 1 सितम्बर, 1933 को हुआ था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत कुछ दिन आकाशवाणी, भोपाल में असिस्टेंट प्रोड्यूसर रहे। इलाहाबाद में कमलेश्वर, मार्कण्डेय और दुष्यंत की दोस्ती बहुत लोकप्रिय थी। वास्तविक जीवन में दुष्यंत बहुत, सहज और मनमौजी व्यक्ति थे। कथाकार कमलेश्वर बाद में दुष्यंत के समधी भी हुए। दुष्यंत का पूरा नाम दुष्यंत कुमार त्यागी था। प्रारम्भ में दुष्यंत कुमार परदेशी के नाम से लेखन करते थे।

दुष्यंत कुमार अपने परिवार के साथ

कृतियाँ

इन्होंने 'एक कंठ विषपायी', 'सूर्य का स्वागत', 'आवाजों के घेरे', 'जलते हुए वन का बसंत', 'छोटे-छोटे सवाल' और दूसरी गद्य तथा कविता की किताबों का सृजन किया। जिस समय दुष्यंत कुमार ने साहित्य की दुनिया में अपने कदम रखे उस समय भोपाल के दो प्रगतिशील शायरों ताज भोपाली तथा कैफ भोपाली का गजलों की दुनिया पर राज था। हिन्दी में भी उस समय अज्ञेय तथा गजानन माधव मुक्तिबोध की कठिन कविताओं का बोलबाला था। उस समय आम आदमी के लिए नागार्जुन तथा धूमिल जैसे कुछ कवि ही बच गए थे। इस समय सिर्फ 42 वर्ष के जीवन में दुष्यंत कुमार ने अपार ख्याति अर्जित की।

अभिताभ बच्चन के प्रशंसक

दुष्यंत कुमार ने बॉलीवुड महानायक अमिताभ बच्चन को उनकी फिल्म 'दीवार' के बाद पत्र लिखकर उनके अभिनय की तारीफ की और कहा कि-"वह उनके 'फैन' हो गए हैं।" दुष्यंत कुमार का वर्ष 1975 में निधन हो गया था और उसी साल उन्होंने यह पत्र अमिताभ को लिखा था। यह दुर्लभ पत्र हाल ही में उनकी पत्नी राजेश्वरी त्यागी ने उन्हीं के नाम से स्थापित संग्रहालय को हाल ही में सौंपा है। दुष्यंत कुमार और अमिताभ के पिता डॉ. हरिवंशराय बच्चन में गहरा प्रेम था। 'दीवार' फिल्म में उन्होंने अमिताभ की तुलना तब के सुपर स्टार्स शशि कपूर और शत्रुघ्न सिन्हा से भी की थी। हिन्दी के इस महान् साहित्यकार की धरोहरें 'दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय' में सहेजी जा रही हैं। इन्हें देखकर ऐसा लगता है कि साहित्य का एक युग यहां पर जीवित है।

दुष्यंत कुमार ने अमिताभ को लिखे इस पत्र में कहा, 'किसी फिल्म आर्टिस्ट को पहली बार खत लिख रहा हूं। वह भी 'दीवार' जैसी फिल्म देखकर, जो मानवीय करुणा और मनुष्य की सहज भावुकता का अंधाधुंध शोषण करती है।' कवि और शायर ने अमिताभ को याद दिलाया, 'तुम्हें याद नहीं होगा। इस नाम (दुष्यंत कुमार) का एक नौजवान इलाहाबाद में अक्सर बच्चन साहब के पास आया करता था, तब तुम बहुत छोटे थे। उसके बाद दिल्ली के विलिंगटन क्रेसेंट वाले मकान में आना-जाना लगा रहा। लेकिन तुम लोगों से संपर्क नहीं रहा।

दरअसल, कभी जरूरत भी महसूस नहीं हुई। मैं तो बच्चनजी की रचनाओं को ही उनकी संतान माने हुए था।' दुष्यंत कुमार ने लिखा, 'मुझे क्या पता था कि उनकी एक संतान का कद इतना बड़ा हो जाएगा कि मैं उसे खत लिखूंगा और उसका प्रशंसक हो जाउंगा।'

वर्तमान कवियों की नजर में दुष्यंत कुमार

निदा फाजली उनके बारे में लिखते हैं-

"दुष्यंत की नजर उनके युग की नई पीढ़ी के गुस्से और नाराजगी से सजी बनी है। यह गुस्सा और नाराजगी उस अन्याय और राजनीति के कुकर्मो के खिलाफ नए तेवरों की आवाज थी, जो समाज में मध्यवर्गीय झूठेपन की जगह पिछड़े वर्ग की मेहनत और दया की नुमानंदगी करती है।"

दिनेश ग्रोवर, प्रकाशक लोकभारती इलाहबाद

सूर्य का स्वागत

दुष्यन्त अपने जीवनकाल में ही एक किंवदंती बन गए थे। उनकी लोकप्रियता का अनुमान केवल इतनी बात से लगाया जा सकता है कि पिछले चुनावों में आमने-सामने दो विरोधी पार्टियां एक ही तख्ती लगाये चल रही थी, सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं। मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए हम फख्र से कह सकते हैं कि हिंदी ने मीर, गालिब भले न पैदा किये हों मगर दुष्यन्त कुमार को पैदा किया है और यही हमारी हिंदी की जातीय अस्मिता की एक बहुत बड़ी विजय है।

लोकप्रिय कवि यश मालवीय

दुष्यन्त की कविता जिन्दगी का बयान है। जिन्दगी के सुख-दुःख में उनकी कविता अनायास याद आ जाती है। विडम्बनायें उनकी कविता में इस तरह व्यक्त होती है कि आम आदमी को वे अपनी आवाज लगने लगती हैं। समय को समझने और उससे लड़ने की ताकत देती ये, कवितायें हमारे समाज में हर संघर्ष में सर्वाधिक उद्धरणीय कविताएँ हैं। सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं। मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए, यह मात्र एक शेर नहीं जिन्दगी का एक दर्शन है फलसफा है। चूँकि दुष्यन्त की कविताएँ जनता के जुबान पर चढ़ी हुई

हैं, इसलिए मीडिया के लोग भी विशेष मौकों पर अपनी बात जन तक पहुँचाने के लिए, उनके दिलों में उतार देने के लिए दुष्यन्त की शायरी का इस्तेमाल करते हैं। दुष्यन्त की गजलें कठिन समय को समझने के लिए शास्त्र और उनसे जूझने के लिए शस्त्र की तरह हैं।

प्रकाशित रचनाएं

काव्यसंग्रह

- सूर्य का स्वागत,
- आवाजों के घेरे,
- जलते हुए वन का वसन्त।

उपन्यास

- छोटे-छोटे सवाल,
- आँगन में एक वृक्ष,
- दुहरी जिंदगी।

एकांकी

- मन के कोण।

नाटक

- मसीहा मर गया,
- गजल-संग्रह,
- साये में धूप।

काव्य नाटक

- एक कण्ठ विषपायी।
- इनके अतिरिक्त कुछ आलोचनात्मक पुस्तकें तथा कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का अनुवाद भी किया।

निधन

दुष्यंत कुमार के सम्मान में जारी डाक टिकट

दुष्यंत कुमार का निधन 30 दिसम्बर सन 1975 में सिर्फ 42 वर्ष की अवस्था में हो गया। दुष्यंत ने केवल देश के आम आदमी से ही हाथ नहीं मिलाया उस आदमी की भाषा को भी अपनाया और उसी के द्वारा अपने दौर का दुख-दर्द गाया।

दुष्यंत कुमार की कुछ पंक्तियाँ

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
आज यह दीवार, परदों की तरह हिलने लगी,
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए।
हर सड़क पर, हर गली में, हर नगर, हर गाँव में,
हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए।
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।-दुष्यंत कुमार2।
मैं जिसे ओढ़ता-बिछाता हूँ,
वो गजल आपको सुनाता हूँ।
एक जंगल है तेरी आँखों में
मैं जहाँ राह भूल जाता हूँ।
तू किसी रेल सी गुजरती है,
मैं किसी पुल-सा थरथराता हूँ।
हर तरफ एतराज होता है,
मैं अगर रोशनी में आता हूँ।
एक बाजू उखड़ गया जब से,
और ज्यादा वजन उठाता हूँ।
मैं तुझे भूलने की कोशिश में,
आज कितने करीब पाता हूँ।
कौन ये फासला निभाएगा,
मैं फरिश्ता हूँ सच बताता हूँ।-दुष्यंत कुमार

14

हरिवंश राय बच्चन

हरिवंश राय बच्चन हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध कवि और लेखक थे। इनकी प्रसिद्धि इनकी कृति 'मधुशाला' के लिये अधिक है। हरिवंश राय बच्चन के पुत्र अमिताभ बच्चन भारतीय सिनेमा जगत के प्रसिद्ध सितारे हैं।

जीवन परिचय

27 नवंबर, 1907 को इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश में जन्मे हरिवंश राय बच्चन हिन्दू कायस्थ परिवार से संबंध रखते हैं। यह 'प्रताप नारायण श्रीवास्तव' और 'सरस्वती देवी' के बड़े पुत्र थे। इनको बाल्यकाल में 'बच्चन' कहा जाता था, जिसका शाब्दिक अर्थ 'बच्चा या संतान' होता है। बाद में हरिवंश राय बच्चन इसी नाम से मशहूर हुए। 1926 में 19 वर्ष की उम्र में उनका विवाह 'श्यामा बच्चन' से हुआ, जो उस समय 14 वर्ष की थी, लेकिन 1936 में 'यामा की टी.बी के कारण मृत्यु हो गई। पाँच साल बाद 1941 में बच्चन ने पंजाब की तेजी सूरी से विवाह किया जो रंगमंच तथा गायन से जुड़ी हुई थीं। इसी समय उन्होंने 'नीड़ का पुनर्निर्माण' जैसे कविताओं की रचना की। तेजी बच्चन से अमिताभ तथा अजिताभ दो पुत्र हुए। अमिताभ बच्चन एक प्रसिद्ध अभिनेता हैं। तेजी बच्चन ने हरिवंश राय बच्चन द्वारा 'शेक्सपीयर' के अनुदित कई नाटकों में अभिनय किया है।

शिक्षा

हरिवंश राय बच्चन की शिक्षा इलाहाबाद तथा 'कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों' में हुई। इन्होंने कायस्थ पाठशालाओं में पहले उर्दू की शिक्षा ली, जो उस समय कानून की डिग्री के लिए पहला कदम माना जाता था। इसके बाद उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम. ए. और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. किया।

कार्यक्षेत्र

हरिवंश राय बच्चन अनेक वर्षों तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में प्राध्यापक रहे। कुछ समय के लिए हरिवंश राय बच्चन आकाशवाणी के साहित्यिक कार्यक्रमों से सम्बद्ध रहे, फिर 1955 ई. में वह विदेश मंत्रालय में हिन्दी विशेषज्ञ होकर दिल्ली चले गये। विश्वविद्यालयों के दिनों में इन्होंने कैम्ब्रिज जाकर 1952-1954 ई. में अंग्रेजी कवि यीट्स पर शोध प्रबन्ध लिखा, जो काफी प्रशंसित हुआ।

साहित्यिक परिचय

बच्चन जी अपने महानायक पुत्र अमिताभ व महाकवि सुमित्रानंदन पंत के साथ

'बच्चन' की कविता के साहित्यिक महत्त्व के बारे में अनेक मत हैं। 'बच्चन' के काव्य की विलक्षणता उनकी लोकप्रियता है। यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि आज भी हिन्दी के ही नहीं, सारे भारत के सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में 'बच्चन' का स्थान सुरक्षित है। इतने विस्तृत और विराट श्रोतावर्ग का विरले ही कवि दावा कर सकते हैं।

सर्वग्राह्य और सर्वप्रिय

'बच्चन' की कविता इतनी सर्वग्राह्य और सर्वप्रिय है, क्योंकि 'बच्चन' की लोकप्रियता मात्र पाठकों के स्वीकरण पर ही आधारित नहीं थी, जो कुछ मिला वह उन्हें अत्यन्त रुचिकर जान पड़ा। वे छायावाद के अतिशय सुकुमार्य और माधुर्य से, उसकी अतीन्द्रिय और अति वैयक्तिक सूक्ष्मता से, उसकी लक्षणात्मक अभिव्यंजना शैली से उकता गये थे। उर्दू की गजलों में चमक और लचक थी, दिल पर असर करने की ताकत थी, वह सहजता और संवेदना थी, जो पाठक

या श्रोता के मुँह से बरबस यह कहलवा सकती थी कि, मैंने पाया यह कि गोया वह भी मेरे दिल में है। मगर हिन्दी कविता जनमानस और जन रुचि से बहुत दूर थी। 'बच्चन' ने उस समय (1935 से 1940 ई. के व्यापक खिन्नता और अवसाद के युग में) मध्यवर्ग के विक्षुब्ध, वेदनाग्रस्त मन को वाणी का वरदान दिया। उन्होंने सीधी, सादी, जीवन्त भाषा और सर्वग्राह्य, गेय शैली में, छायावाद की लाक्षणिक वक्रता की जगह संवेदनासिक्त अभिधा के माध्यम से, अपनी बात कहना आरम्भ किया और हिन्दी काव्य रसिक सहसा चौंक पड़ा, क्योंकि उसने पाया यह कि वह भी उसके दिल में है। 'बच्चन' ने प्राप्त करने के उद्देश्य से चेष्टा करके यह राह ढूँढ निकाली और अपनायी हो, यह बात नहीं है, वे अनायास ही इस राह पर आ गये। उन्होंने अनुभूति से प्रेरणा पायी थी, अनुभूति को ही काव्यात्मक अभिव्यक्ति देना उन्होंने अपना ध्येय बनाया।

हरिवंश राय बच्चन

पहला काव्य संग्रह

एक प्रकाशन 'तेरा हार' पहले भी प्रकाशित हो चुका था, पर 'बच्चन' का पहला काव्य संग्रह 1935 ई. में प्रकाशित 'मधुशाला' से ही माना जाता है। इसके प्रकाशन के साथ ही 'बच्चन' का नाम एक गगनभेदी रॉकेट की तरह तेजी से उठकर साहित्य जगत पर छा गया। 'मधुबाला', 'मधुशाला' और 'मधुकलश'–एक के बाद एक, ये तीनों संग्रह शीघ्र ही सामने आ गये हिन्दी में जिसे 'हालावाद' कहा गया है। ये उस काव्य पद्धति के धर्म ग्रन्थ हैं। उस काव्य पद्धति के संस्थापक ही उसके एकमात्र सफल साधक भी हुए, क्योंकि जहाँ 'बच्चन' की पैरोडी करना आसान है, वहीं उनका सच्चे अर्थ में, अनुकरण असम्भव है। अपनी सारी सहज सार्वजनीनता के बावजूद 'बच्चन' की कविता नितान्त वैयक्तिक, आत्म–स्फूर्त और आत्मकेन्द्रित है।

प्रेरणा

'बच्चन' ने इस 'हालावाद' के द्वारा व्यक्ति जीवन की सारी नीरसताओं को स्वीकार करते हुए भी उससे मुँह मोड़ने के बजाय उसका उपयोग करने की, उसकी सारी बुराइयों और कमियों के बावजूद जो कुछ मधुर और आनन्दपूर्ण होने के कारण गाह्य है, उसे अपनाने की प्रेरणा दी। उर्दू कवियों ने 'वाइज' और

'बजा', मस्जिद और मजहब, कयामत और उकवा की परवाह न करके दुनिया-ए-रंगों-बू को निकटता से, बार-बार देखने, उसका आस्वादन करने का आमंत्रण दिया है। ख्याम ने वर्तमान क्षण को जानने, मानने, अपनाने और भली प्रकार इस्तेमाल करने की सीख दी है और 'बच्चन' के 'हालावाद' का जीवन-दर्शन भी यही है। यह पलायनवाद नहीं है, क्योंकि इसमें वास्तविकता का अस्वीकरण नहीं है, न उससे भागने की परिकल्पना है, प्रत्युत्त वास्तविकता की शुष्कता को अपनी मनस्तरंग से सींचकर हरी-भरी बना देने की सशक्त प्रेरणा है। यह सत्य है कि 'बच्चन' की इन कविताओं में रूमानियत और कसक है, पर हालावाद गम गलत करने का निमंत्रण है, गम से घबराकर खुदकुशी करने का नहीं।

सर्वोत्कृष्ट काव्योपलब्धि

हरिवंशराय बच्चन, सुमित्रानंदन पंत और रामधारी सिंह 'दिनकर'

अपने जीवन की इस मंजिल में 'बच्चन' अपने युवाकाल के आदर्शों और स्वप्नों के भग्नावशेषों के बीच से गुजर रहे थे। पढ़ाई छोड़कर राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़े थे। अब उस आंदोलन की विफलता का कड़वा घूँट पी रहे थे। एक छोटे से स्कूल में अध्यापक की नौकरी करते हुए वास्तविकता और आदर्श के बीच की गहरी खाई में डूब रहे थे। इस अभाव की दशा में पत्नी के असाध्य रोग की भयंकरता देख रहे थे, अनिवार्य विद्रोह के आतंक से त्रस्त और व्यथित थे। परिणामत: 'बच्चन' का कवि अधिकाधिक अंतर्मुखी होता गया। इस युग और इस 'मूड' की कविताओं के संग्रह 'निशा निमंत्रण' (1938 ई.) तथा 'एकान्त संगीत' 'बच्चन' की सम्भवत: सर्वोत्कृष्ट काव्योपलब्धि हैं। वैयक्तिक, व्यावहारिक जीवन में सुधार हुआ। अच्छी नौकरी मिली, 'नीड़ का निर्माण फिर' से करने की प्रेरणा और निमित्त की प्राप्ति हुई। 'बच्चन' ने अपने जीवन के इस नये मोड़ पर फिर आत्म-साक्षात्कार किया, मन को समझाते हुए पूछा,

"जो बसे हैं, वे उजड़ते हैं, प्रकृति के जड़ नियम से, पर किसी उजड़े हुए को फिर से बसाना कब मना है?"

परम निर्मल मन से 'बच्चन' ने स्वीकार किया है कि

"है चिता की राख कर में, माँगती सिन्दूर दुनियाँ"-व्यक्तिगत दुनिया का इतना सफल, सहज साधारणीकरण दुर्लभ है।

लोकप्रियता

'बच्चन' की कविता की लोकप्रियता का प्रधान कारण उसकी सहजता और संवेदनशील सरलता है और यह सहजता और सरल संवेदना उसकी अनुभूतिमूलक सत्यता के कारण उपलब्ध हो सकी। 'बच्चन' ने आगे चलकर जो भी किया हो, आरम्भ में उन्होंने केवल आत्मानुभूति, आत्मसाक्षात्कार और आत्माभिव्यक्ति के बल पर काव्य की रचना की। कवि के अहं की स्फीति ही काव्य की असाधारणता और व्यापकता बन गई। समाज की अभावग्रस्त व्यथा, परिवेश का चमकता हुआ खोखलापन, नियति और व्यवस्था के आगे व्यक्ति की असहायता और बेबसी 'बच्चन' के लिए सहज, व्यक्तिगत अनुभूति पर आधारित काव्य विषय थे। उन्होंने साहस और सत्यता के साथ सीधी-सादी भाषा और शैली में सहज ही कल्पनाशीलता और सामान्य बिम्बों से सजा-सँवार कर अपने नये गीत हिन्दी जगत को भेंट किये। हिन्दी जगत ने उत्साह से उनका स्वागत किया।

भगवतीचरण वर्मा के साथ हरिवंश राय बच्चन और अमिताभ बच्चन

सन्	प्रमुख कृतियाँ।
1932	तेरा हार।
1935	मधुशाला।
1936	मधुबाला।
1937	मधुकलश।
1938	निशा निमंत्रण।
1938	खैयाम की मधुशाला।
1939	एकांत संगीत।
1943	आकुल अंतर।
1945	सतरंगिनी।
1946	हलाहल।
1946	बंगाल का काव्य।
1948	खादी के फूल।
1948	सूत की माला।
1950	मिलन यामिनी।
1955	प्रणय पत्रिका।

1957	धार के इधर उधर।
1958	आरती और अंगारे।
1958	बुद्ध और नाचघर।
1961	त्रिभंगिमा।
1962	चार खेमे चौंसठ खूंटे।
1965	दो चट्टानें।
1967	बहुत दिन बीते।
1968	कटती प्रतिमाओं की आवाज।
1969	उभरते प्रतिमानों के रूप।
1973	जाल समेटा।
1934	बचपन के साथ क्षण भर।
1938	खय्याम की मधुशाला।
1953	सोपान।
1957	मैकबेथ।
1958	जनगीता।
1959	ओथेलो।
1959	उमर खय्याम की रुबाइयाँ।
1960	कवियों के सौम्य संत पंत।
1960	आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि सुमित्रानंदन पंत।
1961	आधुनिक कवि 7।
1961	नेहरू राजनीतिक जीवनचित्र।
1962	नये पुराने झरोखे।
1964	अभिनव सोपान।
1964	चौसठ रूसी कविताएँ।
1968	डब्लू बी यीट्स एंड ऑकल्टिज्म।
1968	मरकट द्वीप का स्वर।
1966	नागर गीत।
1967	बचपन के लोकप्रिय गीत।
1969	हैमलेट।
1970	भाषा अपनी भाव पराये।
1970	पंत के सौ पत्र।

1971	प्रवास की डायरी।
1973	टूटी छूटी कड़ियां।
1981	मेरी कविताई की आधी सदी।
1981	सोहं हंस।
1982	आठवें दशक की प्रतिनिधी श्रेष्ठ कवितायें।
1984	मेरी श्रेष्ठ कविताएँ।
1969	क्या भूलूं क्या याद करूं।
1970	नीड़ का निर्माण फिर।
1977	बसेरे से दूर।
1965	दशद्वार से सोपान तक।
1983	बच्चन रचनावली के नौ खण्ड।

कवि ने नये सुख और सम्पन्नता के युग में प्रवेश किया। 'सतरंगिनी' (1945 ई.) और 'मिलन यामिनी' (1950 ई.) में 'बच्चन' के नये उल्लास भरे युग की सुन्दर गीतोपलब्धियाँ देखने-सुनने को मिलीं।

आत्मकेन्द्रित कवि

'बच्चन' एकान्त आत्मकेन्द्रित कवि हैं, इसी कारण उनकी वे रचनाएँ, जो सहज स्फूर्त नहीं हैं, उदाहरण के लिए 'बंगाल के काल' और महात्मा गांधी की हत्या पर लिखी कविताएँ केवल नीरस ही नहीं सर्वथा कवित्व रहित हो गई हैं। स्वानुभूति का कवि यदि अनुभूति के बिना कविता लिखता है तो उसे सफलता तभी मिल सकती है, जबकि उसकी रचना का विचार तत्त्व या शिल्प उसे सामान्य तुकबंदी से ऊपर उठा सके-और विचारतत्त्व और शिल्प 'बच्चन' के काव्य में अपेक्षाकृत क्षीण और अशक्त हैं। प्रबल काव्यानुभूति के क्षण विरल होते हैं और 'बच्चन' ने बहुत अधिक लिखा है। यह अनिवार्य था कि उनकी उत्तर काल की अधिकांश रचनाएँ अत्यन्त सामान्य कोटि की पद्यकृतियाँ होकर रह जातीं। उन्होंने काव्य के शिल्प में अनेक प्रयोग किये हैं, पर वे प्रयोग अधिकतर उर्दू कवियों के तरह-तरह की बहरों में तरह-तरह की 'जमीन' पर नज्म कहने की चेष्टाओं से अधिक महत्त्व के नहीं हो पाये।

रोचक प्रसंग

उमर खय्याम की रुबाइयों का हरिवंशराय बच्चन द्वारा किया गया अनुवाद एक भावभूमि, एक दर्शन और एक मानवीय संवेदना का परिचय देता है।

बच्चनजी ने इस अनुवाद के साथ एक महत्त्वपूर्ण लम्बी भूमिका भी लिखी थी, उसके कुछ अंश इस प्रकार से हैं-

उमर खय्याम के नाम से मेरी पहली जान-पहचान की एक बड़ी मजेदार कहानी है। उमर खय्याम का नाम मैंने आज से लगभग 25 बरस हुए जब जाना था, उस समय मैं वर्नाक्यूलर अपर प्राइमरी के तीसरे या चौथे दरजे में रहा हूँगा। हमारे पिताजी 'सरस्वती' मंगाया करते थे। पत्रिका के आने पर मेरा और मेरे छोटे भाई का पहला काम यह होता था कि उसे खोलकर उसकी तस्वीरों को देख डालें। उन दिनों रंगीन तस्वीर एक ही छपा करती थी, पर सादे चित्र, फोटो इत्यादि कई रहते थे। तस्वीरों को देखकर हम बड़ी उत्सुकता से उस दिन की बाट देखने लगते थे, जब पिताजी और उनकी मित्र-मंडली इसे पढ़कर अलग रख दें। ऐसा होते-होते दूसरे महीने की 'सरस्वती' आने का समय आ जाता था। उन लोगों के पढ़ चुकने पर हम दोनों भाई अपनी कैंची और चाकू लेकर 'सरस्वती' के साथ इस तरह जुट जाते थे, जैसे-मेडिकल कॉलेज के विद्यार्थी मुर्दों के साथ। एक-एक करके सारी तस्वीरें काट लेते थे। तस्वीरें काट लेने के बाद पत्रिका का मोल हमको दो कौड़ी भी अधिक जान पड़ता। चित्रों के काटने में जल्दबाजी करने के लिए, अब तक याद है, पिताजी ने कई बार 'गोशमाली' भी की थी।

उन्हीं दिनों की बात है, किसी महीने की 'सरस्वती' में एक रंगीन चित्र छपा था-एक बूढ़े मुस्लिम की तस्वीर थी, चेहरे से शोक टपकता थाय नीचे छपा था-उमर खय्याम। रुबाइयात के किस भाव को दिखाने के लिए यह चित्र बनाया गया था, इसके बारे में कुछ नहीं कह सकता, इस समय चित्र की कोई बात याद नहीं है, सिवा इसके कि एक बूढ़ा मुस्लिम बैठा है और उसके चेहरे पर शोक की छाया है। हम दोनों भाइयों ने चित्र को साथ-ही-साथ देखा और नीचे पढ़ा 'उमर खय्याम'। मेरे छोटे भाई मुझसे पूछ पड़े, "भाई, उमर खय्याम क्या है?" अब मुझे भी नहीं मालूम था कि उमर खय्याम के क्या माने हैं। लेकिन मैं बड़ा ठहरा, मुझे अधिक जानना चाहिए, जो बात उसे नहीं मालूम है, वह मुझे मालूम है, यही दिखाकर तो मैं अपने बड़े होने की धाक उस पर जमा सकता था। मैं चूकने वाला नहीं था। मेरे गुरुजी ने यह मुझे बहुत पहले सिखा रखा था कि चुप बैठने से गलत जवाब देना अच्छा है।

भगवतीचरण वर्मा के 75वें जन्मदिवस पर हरिवंश राय बच्चन

मैंने अपनी अक्ल दौड़ायी और चित्र देखते ही देखते बोल उठा, "देखो यह बूढ़ा कह रहा है-उमर खय्याम, जिसका अर्थ है 'उमर खत्याम', अर्थात उमर खतम होती है, यह सोचकर बूढ़ा अफसोस कर रहा है।" उन दिनों संस्कृत भी पढ़ा करता था। 'खय्याम' में कुछ 'क्षय' का आभास मिला होगा और उसी से कुछ ऐसा भाव मेरे मन में आया होगा। बात टली, मैंने मन में अपनी पीठ ठोंकी, हम और तस्वीरों को देखने में लग गये, पर छोटे भाई को आगे चलकर जीवन का ऐसा क्षेत्र चुनना था, जहाँ हर बात को केवल ठीक ही ठीक जानने की जरूरत होती है। जहाँ कल्पना, अनुमान या कयास के लिए सुई की नोक के बराबर भी जगह नहीं है। लड़कपन से ही उनकी आदत हर बात को ठीक-ठीक जानने की ओर रहा करती थी। उन्हें कुछ ऐसा आभास हुआ कि मैं बेपर उड़ा रहा हूँ। शाम को पिताजी से पूछ बैठे। पिताजी ने जो कुछ बतलाया उसे सुनकर मैं झेंप गया। मेरी झेंप को और अधिक बढ़ाने के लिए छोटे भाई बोल उठे, "पर भाई तो कहते हैं कि यह बूढ़ा कहता है कि उमर खतम होती है-उमर खय्याम यानी उमर खत्याम।" पिताजी पहले तो हँसे, पर फिर गम्भीर हो गये, मुझसे बोले, "तुम ठीक कहते हो, बूढ़ा सचमुच यही कहता है।" उस दिन मैंने यही समझा कि पिताजी ने मेरा मन रखने के लिए ऐसा कह दिया है, वास्तव में मेरी सूझ गलत थी।

उमर खय्याम की वह तस्वीर बहुत दिनों तक मेरे कमरे की दीवार पर टंगी रही। जिस दुनिया में न जाने कितनी सजीव तस्वीरें दो दिन चमककर खाक में मिल जाती हैं, उसमें उमर खय्याम की निर्जीव तस्वीर कितने दिनों तक अपनी हस्ती बनाये रख सकती थी! उमर खय्याम की तस्वीर तो मिट गयी पर मेरे हृदय पर एक अमिट छाप छोड़ गयी। उमर खय्याम और उमर खतम होती है, यह दोनों बात मेरे मन में एक साथ जुड़ गयीं, तब से जब कभी भी मैंने 'उमर खय्याम' का नाम सुना या लिया, मेरे हृदय में वही टुकड़ा, 'उमर खतम होती है' गूज उठा। यह तो मैंने बाद में जाना कि अपनी गलत सूझ में भी मैंने इन दो बातों में एक बिल्कुल ठीक सम्बन्ध बना लिया था।

काव्य भाषा की गरिमा

सामान्य बोलचाल की भाषा को काव्य भाषा की गरिमा प्रदान करने का श्रेय निश्चय ही सर्वाधिक 'बच्चन' का ही है। इसके अतिरिक्त उनकी

लोकप्रियता का एक कारण उनका काव्य पाठ भी रहा है। हिन्दी में कवि सम्मेलन की परम्परा को सुदृढ़ और जनप्रिय बनाने में 'बच्चन' का असाधारण योग है। इस माध्यम से वे अपने पाठकों-श्रोताओं के और भी निकट आ गये। कविता के अतिरिक्त 'बच्चन' ने कुछ समीक्षात्मक निबन्ध भी लिखे हैं, जो गम्भीर अध्ययन और सुलझे हुए विचार प्रतिपादन के लिए पठनीय हैं। उनके शेक्सपीयर के नाटकों के अनुवाद और 'जनगीता' के नाम से प्रकाशित दोहे-चौपाइयों में 'भगवद गीता' का उल्था 'बच्चन' के साहित्यिक कृतित्व के विशेषतया उल्लेखनीय या स्मरणीय अंग माने जायेंगे या नहीं, इसमें संदेह है।

सम्मान और पुरस्कार

हरिवंश राय बच्चन को उनकी कृति 'दो चट्टाने' को 1968 में हिन्दी कविता के लिए 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था। उन्हें 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' तथा एफ्रो एशियाई सम्मेलन के 'कमल पुरस्कार' से भी सम्मानित किया गया। बिड़ला फाउन्डेशन ने उनकी आत्मकथा के लिये उन्हें सरस्वती सम्मान दिया था। 1955 में इंदौर के 'होल्कर कॉलेज' के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ. शिवमंगलसिंह सुमन ने हरिवंश राय बच्चन को कवि सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए आमंत्रित किया था। हरिवंश राय बच्चन को भारत सरकार द्वारा सन् 1976 में साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था।

हरिवंश राय बच्चन की रचनाएँ

कहते हैं तारे गाते हैं-हरिवंश राय बच्चन।
नीड़ का निर्माण-हरिवंश राय बच्चन।
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है-हरिवंश राय बच्चन।
पतझड़ की शाम-हरिवंश राय बच्चन।
नव वर्ष-हरिवंश राय बच्चन।
प्रतीक्षा-हरिवंश राय बच्चन।
आज तुम मेरे लिए हो-हरिवंश राय बच्चन।
साजन आए, सावन आया-हरिवंश राय बच्चन।

15

गजानन माधव 'मुक्तिबोध'

गजानन माधव 'मुक्तिबोध' की प्रसिद्धि प्रगतिशील कवि के रूप में है। मुक्तिबोध हिन्दी साहित्य की स्वातंत्र्योत्तर प्रगतिशील काव्यधारा के शीर्ष व्यक्तित्व थे। हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक चर्चा के केन्द्र में रहने वाले मुक्तिबोध कहानीकार भी थे और समीक्षक भी। उन्हें प्रगतिशील कविता और नयी कविता के बीच का एक सेतु भी माना जाता है।

मुक्तिबोध हिन्दी संसार की एक घटना बन गए। कुछ ऐसी घटना, जिसकी ओर से आँखें मूंद लेना असम्भव था। उनका एकनिष्ठ संघर्ष, उनकी अटूट सच्चाई, उनका पूरा जीवन, सभी एक साथ हमारी भावनाओं के केंद्रीय मंच पर सामने आए और सभी ने उनके कवि होने को नई दृष्टि से देखा। कैसा जीवन था वह और ऐसे उसका अंत क्यों हुआ और वह समुचित ख्याति से अब तक वंचित क्यों रहा? यह तल्ख टिप्पणी शमशेर बहादुर सिंह की है, जो उन्होंने बड़े बेबाक ढंग से हिंदी जगत् के साहित्यकारों की निस्संगता पर कही है।

जन्म और शिक्षा

गजानन माधव 'मुक्तिबोध' का जन्म 13 नवंबर, 1917 को 'यौपुर (ग्वालियर) में हुआ था। इनकी आरम्भिक शिक्षा उज्जैन में हुई। मुक्तिबोध जी के पिता पुलिस विभाग के इंस्पेक्टर थे और उनका तबादला प्राय: होता रहता था। इसीलिए मुक्तिबोध जी की पढ़ाई में बाधा पड़ती रहती थी। इन्दौर के होल्कर

से सन् 1938 में बी.ए. करके उज्जैन के माडर्न स्कूल में अध्यापक हो गए। इनका एक सहपाठी था शान्ताराम, जो गश्त की ड्यूटी पर तैनात हो गया था। गजानन उसी के साथ रात को शहर की घुमक्कड़ी को निकल जाते। बीड़ी का चस्का शायद तभी से लगा।

परिवार

इनके पिता माधव मुक्तिबोध भी बहुत शुस्ता फसीह उर्दू बोलते थे। ये कई स्थानों में थानेदार रह कर उज्जैन में इन्स्पैक्टर के पद से रिटायर हुए। मुक्तिबोध की माँ बुन्देलखण्ड की थीं, ईसागढ़ के एक किसान परिवार की, गजानन चार भाई हैं। इनसे छोटे शरतचन्द्र मराठी के प्रतिष्ठित कवि हैं। पारिवारिक असहमति और विरोध के बावजूद 1939 में शांता के साथ प्रेम-विवाह किया।

'मुक्तिबोध' प्रतिमा

आरंभिक जीवन

मुक्तिबोध जी ने छोटी आयु में बडनगर के मिडिल स्कूल में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। सन् 1940 में मुक्तिबोध शुजालपुर के शारदा शिक्षा सदन में अध्यापक हो गए। इसके बाद उज्जैन, कलकत्ता, इंदौर, बम्बई, बंगलौर, बनारस तथा जबलपुर आदि जगहों पर नौकरी की। सन् 1942 के आंदोलन में जब यह शारदा शिक्षा सदन बंद हो गया तो यह शीराजा बिखर गया। मुक्तिबोध उज्जैन चले गये। भिन्न-भिन्न नौकरियाँ कीं-मास्टरी से वायुसेना, पत्रकारिता से पार्टी तक, नागपुर 1948 में आये। सूचना तथा प्रकाशन विभाग, आकाशवाणी एवं 'नया खून' में काम किया। अंत में कुछ माह तक पाठ्य पुस्तकें भी लिखी। अंततः 1958 से दिग्विजय महाविद्यालय, राजनाँदगाँव में प्राध्यापक हुए, उन्होंने लिखा है कि–

नौकरियाँ पकड़ता और छोड़ता रहा।
शिक्षक, पत्रकार, पुनः शिक्षक, सरकारी और गैर सरकारी नौकरियाँ।
निम्न-मध्यवर्गीय जीवन, बाल-बच्चे, दवादारू, जन्म-मौत में उलझा रहा।

सहपाठी मित्र

गजानन के सहपाठी मित्रों में रोमानी कल्पना के कवि वीरेन्द्र कुमार जैन और प्रभागचन्द्र शर्मा, अनन्तर 'कर्मवीर' में सहकारी सम्पादक और उस समय के

एक अच्छे, योग्य कवि थे। कविता की ओर रमाशंकर शुक्ल 'हृदय' ने गजानन को काफी प्रोत्साहित किया था। 'कर्मवीर' में उन की कविताएँ छप रही थीं। माखनलाल और महादेवी की रहस्यात्मक शैली मालवा के तरुण हृदयों को आकृष्ट किये हुए थी, मगर मुक्तिबोध दॉस्तॉयवस्की, फ्लाबेअर और गोर्की में भी कम खोये हुए नहीं रहते थे।

मुक्तिबोध अपनी पत्नी श्रीमती शांता के साथ

पत्रिका सम्पादन

आगरा से नेमिचन्द्र जैन शुजालपुर पहुँच गए थे। प्रभाकर माचवे भी अक्सर आ जाते। 'तार-सप्तक' की मूल परिकल्पना भी यहीं बनी। सन् 1943 में अज्ञेय के सम्पादन में 'तार-सप्तक' का प्रकाशन हुआ। जिसकी शुरुआत मुक्तिबोध की कविताओं से होती है। उज्जैन से सन् 1945 के लगभग मुक्तिबोध बनारस गये और त्रिलोचन शास्त्री के साथ 'हंस' के सम्पादन में शामिल हुए। वहाँ सम्पादन से लेकर डिस्पैचर तक का काम वह करते थे, साठ रुपये वेतन था। उनका काशी प्रवास बहुत सुखद नहीं रहा। भारतभूषण अग्रवाल और नेमिचन्द्र जैन ने उन्हें कलकत्ता बुलाया। पर अध्यापकी या सम्पादकी का कहीं कोई डौल नहीं जमा। हार कर मुक्तिबोध सन् 1946-1947 में जबलपुर चले गये। वहाँ 'हितकारिणी हाई स्कूल' में वह अध्यापक हो गये। और फिर नागपुर जा निकले। नागपुर का समय बीहड़ संघर्ष का समय था, किन्तु रचना की दृष्टि से अत्यन्त उर्वर। 'नया खून' साप्ताहिक में वे नियमित रूप से लिखते रहे। साम्प्रदायिक दंगे जोरों से शुरू हो गये थे। उस जमाने में वह दैनिक 'जय-हिन्द' में भी कुछ काम करते थे। रात की ड्यूटी दे कर कर्फ्यू के सन्नाटे में वह घर लौटते।

तार-सप्तक

शुजालपुर और उज्जैन ने सबसे मूल्यांकन चीज जो हिन्दी को दी वह 'तार-सप्तक' है। इसकी मूल परिकल्पना प्रभाकर माचवे और नेमिचन्द्र जैन की थी। नाम 'तार-सप्तक' प्रभाकर माचवे का सुझाया हुआ था। भारतभूषण अग्रवाल तब नेमि जी के बड़े गहरे मित्र थे। अतः उनका सम्पर्क भी शुजालपुर और मुक्तिबोध से हो गया। आरम्भ में प्रभागचन्द्र शर्मा और वीरेन्द्र कुमार जैन भी इस सप्तक-योजना के स्वर थे। अज्ञेय जी से सम्पर्क बढ़ने पर योजना को कार्य रूप

में सम्पन्न करने के लिए उसमें सम्पादन का भार उन पर डाल दिया गया। नेमिचन्द्र और भारतभूषण जब कलकत्ता (अब कोलकाता) में थे, योजना ने अन्तिम रूप ले लिया। अज्ञेय भी ने डॉ. रामविलास शर्मा और गिरिजाकुमार माथुर के नाम सुझाये। सात की सीमा निश्चित होने के कारण नामावली में परिवर्तन अनिवार्य था। 1943 में जब यह ऐतिहासिक संग्रह प्रकाशित हुआ, उसने एक लम्बे विवाद को जन्म दिया, जो किसी न किसी संदर्भ या अर्थ में अब भी जारी है। उस संग्रह में मुक्तिबोध का योग उस समय सब से प्रोढ़ चाहे न हो, मगर शायद सबसे मौलिक था। दुरूह होते हुए बौद्धिक, बौद्धिक होते हुए भी रोमानी।

मुक्तिबोध द्वारा हस्तलिखित कविता

बीसवीं सदी की हिंदी कविता का सबसे बेचौन, सबसे तड़पता हुआ और सबसे ईमानदार स्वर है गजानन माधव मुक्तिबोध। मुक्तिबोध की कविता जटिल है। भगवान सिंह ने उनकी कविता की जटिलता का बयान इस तरह किया है, 'वे सरस नहीं हैं, सुखद नहीं हैं। वे हमें झकझोर देती हैं, गुदगुदाती नहीं। वे मात्र अर्थग्रहण की मांग नहीं करतीं, आचरण की भी मांग करती हैं। तारसप्तक में मुक्तिबोध ने स्वयं कहा है, 'मेरी कविताएँ अपना पथ खोजते बेचैन मन की अभिव्यक्ति हैं। उनका सत्य और मूल्य उसी जीव-स्थिति में छिपा है।

"नई कविता में मुक्तिबोध की जगह वही है, जो छायावाद में निराला की थी। निराला के समान ही मुक्तिबोध ने भी अपनी युग के सामान्य काव्य-मूल्यों को प्रतिफलित करने के साथ ही उनकी सीमा की चुनौती देकर उस सर्जनात्मक विशिष्टता को चरितार्थ किया, जिससे समकालीन काव्य का सही मूल्यांकन हो सका।"

-नामवर सिंह

लेखक संघ

उज्जैन में मुक्तिबोध ने मध्य भारत प्रगतिशील लेखक संघ की बुनियाद डाली। इसकी विशिष्ट सभाओं में भाग लेने के लिए वह बाहर से डॉ. रामविलास शर्मा, अमृतराय आदि साहित्यिक विचारकों को बुलाते थे। उन्होंने सन् 1944 के अन्त में इन्दौर में फासिस्ट विरोधी लेखक सम्मेलन का आयोजन किया, जो राहुल जी की अध्यक्षता में हुई। लेखकों के दायित्व पर मुक्तिबोध ने स्वयं भी एक निबन्ध उस पर पढ़ा था। मुक्तिबोध नवोदित प्रतिभावों का निरन्तर उत्साह बढ़ाते

रहते और उन्हें आगे लाते। हरिनारायण व्यास, 'याम परमार, जगदीश वोरा आदि उन के प्रभाव में थे। मुक्तिबोध ने मजदूरों से वास्तविक सम्पर्क स्थापित किया और उनसे घुल-मिल कर रहे। अक्सर कष्ट में पड़े साथियों और साहित्यिक बन्धुओं के लिए दौड़-धूप करते। मसलन 'नटवर' जी के लिए उन की दौड़-धूप की, बात चलती है तो, लोग याद करते हैं।

प्रगतिशील कवि

मुक्तिबोध स्मारक

मुक्तिबोध मूलत: कवि हैं। उनकी आलोचना उनके कवि व्यक्तित्व से ही नि:सृत और परिभाषित है। वही उसकी शक्ति और सीमा है। उन्होंने एक ओर प्रगतिवाद के कठमुल्लेपन को उभार कर सामने रखा तो दूसरी ओर नयी कविता की ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों का पर्दाफाश किया। यहाँ उनकी आलोचना दृष्टि का पैनापन और मौलिकता असन्दिग्ध है। उनकी सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समीक्षा में तेजस्विता है। जयशंकर प्रसाद, शमशेर, कुँवर नारायण जैसे कवियों की उन्होंने जो आलोचना की है, उसमें पर्याप्त विचारोत्तेजकता है और विरोधी दृष्टि रखने वाले भी उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं। काव्य की सृजन प्रक्रिया पर उनका निबन्ध महत्त्वपूर्ण है। खासकर फैण्टेसी का जैसा विवेचन उन्होंने किया है, वह अत्यन्त गहन और तात्विक है। उन्होंने नयी कविता का अपना शास्त्र ही गढ़ डाला है। पर वे निरे शास्त्रीय आलोचक नहीं हैं। उनकी कविता की ही तरह उनकी आलोचना में भी वही चरमता है, ईमान और अनुभव की वही पारदर्शिता है, जो प्रथम श्रेणी के लेखकों में पाई जाती है। उन्होंने अपनी आलोचना द्वारा ऐसे अनेक तथ्यों को उद्घाटित किया है, जिन पर साधारणत: ध्यान नहीं दिया जाता रहा। 'जड़ीभूत सौन्दर्याभरुचि' तथा 'व्यक्ति के अन्त:करण के संस्कार में उसके परिवार का योगदान' उदाहरण के रूप में गिनाए जा सकते हैं। डॉ. नामवर सिंह जी के शब्दों में-"नई कविता में मुक्तिबोध की जगह वही है, जो छायावाद में निराला की थी। निराला के समान ही मुक्तिबोध ने भी अपनी युग के सामान्य काव्य-मूल्यों को प्रतिफलित करने के साथ ही उनकी सीमा की चुनौती देकर उस सर्जनात्मक विशिष्टता को चरितार्थ किया, जिससे समकालीन काव्य का सही मूल्यांकन हो सका।"

साहित्यिक परिचय

मुक्तिबोध स्मारक

मुक्तिबोध को अपने जीवन काल में न तो बहुत पहचान मिली और न ही उनका कोई भी कविता संग्रह प्रकाशित हो सका, लेकिन उनकी असमय मृत्यु के बाद अचानक ही मुक्तिबोध हिंदी साहित्य के परिदृश्य पर छा गये। सबसे पहले उनकी कवितायें अज्ञेय द्वारा संपादित 'तार सप्तक' (1943) में प्रकाशित हुई थीं। मुक्तिबोध ने कहानी, कविता, उपन्यास, आलोचना आदि विधाओं में लिखा और हर क्षेत्र में उनका हस्तक्षेप अलग से महसूस किया जा सकता है। उन्हें प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता आदि साहित्यिक आंदोलनों के साथ जोड़कर देखा जाता है। 'अँधेरे में' और 'ब्रह्मराक्षस' मुक्तिबोध की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनायें मानी जाती हैं। 'ब्रह्मराक्षस' कविता में कवि ने 'ब्रह्मराक्षस' के मिथक के जरिये बुद्धिजीवी वर्ग के द्वंद्व और आम जनता से उसके अलगाव की व्यथा का मार्मिक चित्रण किया है। इस कविता के संदेश को यदि एक पंक्ति में व्यक्त करना हो तो कहा जा सकता है कि 'अच्छे व बुरे के संघर्ष से भी उग्रतर/अच्छे व उससे अधिक अच्छे बीच का संगर'। लगभग इन्हीं आशयों की कहानी 'ब्रह्मराक्षस का शिष्य' भी उन्होंने लिखी।

कहा जा सकता है कि ये कविताएँ निराला की संवेदनशीलता और कबीर के अक्खड़पन का अद्‌भुत सम्मिश्रण हैं। मुक्तिबोध की रचनाएँ सृजन का विस्फोट हैं। वे सजग चित्रकार की भाँति दुनिया का सुंदरतम उकेरना चाहते हैं। वे चाहते हैं उजली-उजली इबारत, मगर अंधेरे बार-बार उनकी राह रोक लेते हैं। अंधेरे के चक्रव्यूह में घिरे वे अभिमन्यू की तरह अकेले ही जूझते हैं, अनवरत लगातार। यह युद्ध कभी खत्म नहीं होता, चलता ही रहता है, उनके भीतर। वे लड़ते हैं आजीवन क्योंकि उन्हें लगता है कि उन जैसों के हाथ में सच की विरासत है, जिसे उन्हें आने वाले समय को, पीढ़ी को ज्यों का त्यों सौंपना है।

मुक्तिबोध हिन्दी संसार की एक घटना बन गए। कुछ ऐसी घटना, जिसकी ओर से आँखें मूंद लेना असम्भव था। उनका एकनिष्ठ संघर्ष, उनकी अटूट सच्चाई, उनका पूरा जीवन, सभी एक साथ हमारी भावनाओं के केंद्रीय मंच पर सामने आए और सभी ने उनके कवि होने को नई दृष्टि से देखा। कैसा जीवन था वह और ऐसे उसका अंत क्यों हुआ और वह समुचित ख्याति से अब तक वंचित क्यों रहा?

–शमशेर बहादुर सिंह

'वे आते होंगे लोग।
अरे जिनके हाथों में तुम्हें सौंपने ही होंगे
ये मौन उपेक्षित रत्न
मात्र तब तक
केवल तब तक
तुम छिपा चलो धुरिमान उन्हें तम गुहा तले
ओ संवेदन मय ज्ञान नाग
कुन्डली मार तुम दबा रखो
फूटती रश्मियाँ। '
'वे आते ही हों, लो
जिन्हें तुम दोगे देना ही होगा पूरा हिसाब
अपना सबका, मन का, जन का'

अँधेरे में

'अँधेरे में' मुक्तिबोध की अंतिम कविता है और शायद सबसे महत्वपूर्ण भी। इस कविता में सत्ता और बौद्धक वर्ग के बीच गठजोड़, उनके बेनकाब होने, सत्ता द्वारा लोगों पर दमन, पुराने के ध्वंस पर नये के सृजन, इतिहास के बारे में नयी अंतर्दृष्टि आदि देखने को मिलती है। 'अँधेरे में' स्वतंत्रता के बाद के भारत के दो दशकों का अख्यान नहीं है, उसमें हमारा संपूर्ण अतीत मुखरित होता सुना जा सकता है। शायद यही वजह है कि मुक्तिबोध को 'सभ्यता समीक्षा' शब्द बहुत प्रिय है। वे वर्तमान की घटनाओं को महज एक असंबद्ध घटना की तरह नहीं, बल्कि उसके पीछे की पूरी कार्यकारणशृंखला के बतौर समझने की कोशिश करते हैं, जब वे इस प्रक्रिया का अनुसरण करते हैं, तो उनकी कवितायें लंबी होती चली जाती हैं। उन्होंने खुद भी लिखा है कि उनकी जो भी कवितायें छोटी हैं, वे छोटी नहीं, बल्कि अधूरी हैं।

गद्य लेखन

मुक्तिबोध रचनावली

मुक्तिबोध ने कविताओं के अलावा कहानियां भी लिखीं। उनकी कहानियां भी कविताओं का ही विस्तार और कई बार उनका पूर्वाभ्यास लगती हैं। कहानियों

में भी वही जटिलता और संश्लिष्ट बिंबों वाली भाषा मौजूद है, जो उनकी कविताओं की विशिष्टता है। मुक्तिबोध ने हिंदी आलोचना में भी महत्वपूर्ण योगदान किया। उन्होंने 'कामायनी–एक पुनर्विचार' पुस्तक के जरिये कामायनी पर चली आ रही तमाम बहसों को एक नये स्तर तक उठा दिया। उन्होंने कामायनी को एक विशाल फैंटेसी के रूप में पढ़ने की कोशिश की, जिसमें ढहते हुए सामंती मूल्यों की छाया स्पष्ट देखी जा सकती है। रामधारी सिंह दिनकर की पुस्तक 'उर्वशी' पर चली बहस में उनका हस्तक्षेप बहुत कारगर था, जिसमें उन्होंने 'उर्वशी' को व्यर्थ में महिमामंडित करने का तीखा प्रतिवाद किया। मुक्तिबोध ने भक्ति आंदोलन का भी नये सिरे से मूल्यांकन किया और स्थापित किया कि यह मूलत: निचली जातियों का शोषक जातियों के खिलाफ विद्रोह था। बाद में शोषक जातियों ने इस आंदोलन पर नियंत्रण हासिल कर लिया और भक्ति आंदोलन पूरी तरह बिखर गया। उन्होंने साहित्य की रचना प्रक्रिया के बारे में भी महत्वपूर्ण लेखन किया। रचना-प्रक्रिया के संदर्भ में 'कला का तीसरा क्षण' हिन्दी साहित्य की बड़ी उपलब्धि है।

गोत्रहीन कवि

मुक्तिबोध गोत्रहीन कवि हैं। हिन्दी में उनका कोई पूर्वज नहीं खोजा जा सकता। असल में उनके पूर्वज तोल्सतोय, दोस्तोवस्की, गोर्की इत्यादि रूसी उपन्यासकार थे। ऐसा कोई कवि पहले नहीं हुआ, जिसकी प्रेरणा कविता के अलावा उपन्यासों से आई हो। मुक्तिबोध के बाद भी किसी ने उस तरह के शिल्प में उतनी कविता लिखने की हिम्मत नहीं की, क्योंकि उन जैसा लिखना वैसे भी संभव नहीं था। इस तरह अपने समय के अंधेरे को पहचानने की चेष्टा करना, अपने समय के अंधेरे को टटोलना और उस अंधेरे में अपनी हिस्सेदारी, अपनी शिरकत को, आत्म-निर्ममता को स्वीकार करना, मुक्तिबोध से सीखा जा सकता है। बीसवीं सदी के महान् भारतीय लेखकों में मुक्तिबोध का नाम हमेशा रहेगा।

निधन

मुक्तिबोध स्मारक

मुक्तिबोध की रुचि अध्ययन-अध्यापन, पत्रकारिता, समसामयिक राजनीतिक एवं साहित्य के विषयों पर लेखन में थी। 1942 के आस-पास वे वामपंथी

विचारधारा की ओर झुके और शुजालपुर में रहते हुए उनकी वामपंथी चेतना मजबूत हुई। आजीवन गरीबी से लड़ते हुए और रोगों का मुकाबला करते हुए 11 सितम्बर, 1964 को नई दिल्ली में मुक्तिबोध की मृत्यु हो गयी।

मुक्तिबोध स्मारक

11 सितंबर, 1964 को अपनी मृत्यु से पहले तक मुक्तिबोध अपने निवास स्थान पर रहे, जिसे अब मुक्तिबोध स्मारक बना दिया गया है। मुक्तिबोध स्मारक में स्थित उनका एक तैलचित्र भी मौजूद है। यहाँ से रानीसागर का नजारा दिखता है। मुक्तिबोध स्मारक में स्थित चक्करदार सीढ़ियां भी हैं, जिनके बिंब उनकी कविताओं में कई बार आए हैं। कुछ विद्वान् मुक्तिबोध को मार्क्सवादी और समाजवादी विचारों से प्रभावित बताते हैं, तो कुछ उन्हें अस्तित्ववाद से प्रभावित बताते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने उन्हें अस्तित्ववाद से प्रभावित बताते हुए उनकी कविताओं को खारिज किया है, लेकिन मुक्तिबोध प्रगतिशील आंदोलन के छिन्न-भिन्न होने के बाद भी प्रगतिशील मूल्यों पर खड़े रहे। आधुनिकतावाद और व्यक्तिवाद के जरिये समाज की चिंता को साहित्य से परे धकेलने की कोशिशों का उन्होंने विरोध किया। मुक्तिबोध के बाद के कवियों पर उनका व्यापक असर है। अनेक विश्वविद्यालयों में मुक्तिबोध की कविताओं व आलोचना पर शोध कार्य हुए हैं और हो रहे हैं। निर्देशक मणि कौल ने उनकी कहानी 'सहत से उठता आदमी' पर एक फिल्म का निर्माण किया। 2004 में मुक्तिबोध, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और बलदेव मिश्र की स्मृति में राजनांदगांव में एक स्मारक का निर्माण किया गया।

गजानन माधव मुक्तिबोध की रचनाएँ

अँधेरे में (कविता)-गजानन माधव मुक्तिबोध।
चाँद का मुँह टेढ़ा है (कविता)-गजानन माधव मुक्तिबोध।
एक स्वप्न कथा-गजानन माधव मुक्तिबोध।
एक अंत:कथा-गजानन माधव मुक्तिबोध।
जब प्रश्न चिह्न बौखला उठे-गजानन माधव मुक्तिबोध।
ब्रह्मराक्षस-गजानन माधव मुक्तिबोध।
भूल-गलती-गजानन माधव मुक्ति।